Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2348-0076**

JIFE Impact Factor – 5.21

Samajiki Sandarsh

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 2** **(April – June 2025)**

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Samajiki Sandarsh - *A Refereed Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- samajikisandarsh@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Samajiki Sandarsh" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2348-0076

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. Sarswati Singh**, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. Suresh Prasad Rai,** Former-Head, Department of English, S.Sinha College Aurangabad, Bihar
- **Left. Dr. Munna Singh,** Head, Physical Education Department, Handia P.G. College, Handia, Allahabad, U.P.
- **Dr. Bindeshwar Prasad Mandal,** Head, Department of Sociology, B.N. College, Patna University, Patna (Bihar)
- **Dr. Achchelal Yadav,** Head, Physical Education Department, PDU Rajkiya P.G.College, Saidpur, Ghazipur, U.P.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Somu Singh,** Assistant Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur

- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Samajiki Sandarsh,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Samajiki Sandarsh"

➲	अथर्ववेद में अग्नि चिकित्सा ***सौरभ सिंह***	01-03
➲	वैष्णव भक्ति आ संत लक्ष्मीनाथ गोसाँई ***डॉ. कृष्ण मोहन ठाकुर***	04-08
➲	चुनावी राजनीति में पत्रकारिता की भूमिका ***डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव***	09-12
➲	सनातन एवं स्वास्थ्य ***रेशमा***	13-15
➲	भारत का विभाजन (1947) : ब्रिटिश नीतियों और भारतीय राजनीतिक मतभेदों का ऐतिहासिक अध्ययन ***हिमांशु सिंह***	16-23
➲	प्राचीन भारतीय नगरों का विकास ***डॉ. रजनीकान्त राय***	24-27
➲	सलाम कहानी संग्रह में चित्रित आत्मसंघर्ष का स्वरूप ***डॉ. दशरथ राम***	28-33
➲	डॉ. अनिल सुलभ की काव्य–दृष्टि ***मुन्ना कुमार राम*** ***प्रो. कल्याण कुमार झा***	34-37
➲	महिला सशक्तिकरण और पंचायती राजः ग्रामीण भारत में सहभागिता का सशक्त माध्यम ***डॉ. अखिलेश कुमार सिंह***	38-41
➲	बिहार राज्य के औरंगाबाद क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण में जीविका और स्वयं सहायता समूह का योगदान ***सुमित कुमार मिश्रा***	42-46
➲	शचीन्द्रनाथ सान्यालः भारत के सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी मार्गदर्शक ***आकांक्षा***	47-50
➲	गीता के निष्काम कर्म–सिद्धान्त की मूल व्याख्या : एक समीक्षात्मक शोध–पत्र ***डॉ. पवन पाठक***	51-55
➲	तुलनात्मक ध्वनिलक्षणम् ***पतितपावनमिश्रः***	56-59

➲	उच्च रक्तचाप रोगियों में विकार की व्यापकता एवं अहम–शक्ति के बीच सह–संबंध का विश्लेषण ***आनंद जयकिशन*** ***डॉ. सत्यरतन प्रसाद सिंह***	60-64
➲	आजकल की विकास–यात्रा ***सपना कुमारी*** ***प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय*** ***प्रो. (डॉ.) कल्याण कुमार झा***	65-70
➲	समकालीन भारतीय साहित्य का प्रवेशांकः एक विहंगावलोकन ***श्वेता कुमारी*** ***प्रो. सतीश कुमार राय*** ***प्रो. कल्याण कुमार झा***	71-74
➲	भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक का प्रयोग और सामाजिक दुष्प्रभाव ***डॉ. निशा सिंह***	75-78

☙❧

अथर्ववेद में अग्नि चिकित्सा

सौरभ सिंह*

हमारा शरीर पंच-महाभूतों से मिलकर बना है। जिसके 5 तत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी है। यह पंच महाभूत सृष्टि में भी हमे दिखाई देते हैं, और यही पंच महाभूत हमारे शरीर के निर्माण में भी सहायक होते हैं। इसलिए कहा गया है- **"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"**

सृष्टि के चराचर जगत के सभी जीवों के विषय में सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है, कि सभी जीवधारी एक समान रूप से प्रकृति के बनाये हुए नियमों के पालन में लगे हुए हैं। मनुष्य को छोड़कर शेष सभी प्राणी प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलकर स्वस्थ जीवन का उपभोग कर रहे हैं। ईश्वर की सबसे श्रेष्ठ रचना मनुष्य अपने विकसित मस्तिष्क का गलत उपयोग करके प्राकृतिक नियमों का निरन्तर उल्लंघन करता है, और परिणाम स्वरूप उसे अनेक रोगों का दुःख प्राप्त होता है। इन प्राप्त रोगों के दुःखों का कारण मनुष्य स्वयं ही है। यदि मनुष्य प्राकृतिक उपचार करे तो इससे दूर हो सकता है।

पञ्चवाही शब्द का प्रयोग यहाँ पर पंच तत्त्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के लिए आया है। इस पंच तत्त्व के द्वारा इस प्रकृति की रचना हुयी है। विद्वान् लोग इस पंचतत्त्व को अपने अन्दर प्रयुक्त देखकर अपने को प्रबल मानते है। जबकि मूर्ख लोग उसे अपने से अलग मानकर खुद को निर्बल समझते हैं।[1]

पंच महाभूत को बनाने का कार्य इन पाँचो से विरक्त परमात्मा ने किया है। पृथ्वी सहित पांचों तत्त्वों के नियन्ता परमेश्वर है। ऐसा उल्लेख अथर्ववेद में हमें प्राप्त लेता है।[2]

अग्नि तत्त्व से चिकित्सा

अग्नि का प्रयोग करके सभी रोगों की औषधि तैयार की जाती है, इसलिए इसे सभी प्रकार के रोगों की औषधि कहा जाता है।[3] क्योंकि यह शीत के कारण उत्पन्न रोगों को सामाप्त करने में समर्थ होती है। पृथ्वी पर वह स्थान जहाँ पर शीतलता अधिक होती है या बर्फ पड़ती रहती है और तापमान बहुत न्यून होता है, ऐसे शीत प्रधान स्थान के लिए अग्नि जीवन रक्षक होती है। अग्नि के वर्णन के सम्बन्ध में अग्नि को अथर्ववेद में तेज वर्चस् ओजस बल यश और लम्बी आयु का आधार बताया गया है।[4] अग्नि के द्वारा तेज-वर्चस् ओजस् दीर्घायु बल और यश कि वृद्धि होती है। अग्नि के प्रयोग से विष का शमन करने के सम्बन्ध में अथर्ववेद में वर्णन मिलता है कि साँप के विष के प्रभाव को समाप्त करने के लिए जिस स्थान पर साँप के द्वारा काटा गया हो उस शरीर के अंग पर लोहे को गर्म करके दाग देने से सर्प के विष का प्रभाव शरीर से सामाप्त हो जाता है।[5] अग्नि के इस प्रयोग से सर्प विष का शमन हो जाता है, और रोगी का उपचार हो जाता है।

अथर्ववेद सभी को यज्ञ करने का सन्देश देता है, क्योंकि उससे रोग निवारण का भी फल प्राप्त होता है। अग्नि हमारे शरीर में प्राण वायु (आक्सीजन) के सहयोग से प्राण शक्ति को बढ़ाने का कार्य करती है।[6] सूर्य आधुनिक विज्ञान के रूप में अग्नि के स्रोतों में प्रमुख है। इसमें नाभिकीय संलयन की क्रिया होती है। हाइड्रोजन और हाइड्रोजन के परमाणु मिलकर हिलीयम बनाते हैं, और अपार ऊर्जा निकलती है। यह अपार ऊर्जा हमें प्रकृति में सूर्य के रूप में दिखायी देती है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य नाभिकीय संलयन का एक उदाहरण है। सूर्य अग्नि का एक प्रमुख

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

[1] पञ्चवाही वहत्यग्रेमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंर्वहन्ति । अथर्ववेद 10/08/08

[2] पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा । अथर्ववेद 19/23/02

[3] हिमस्य त्वा जरायुंणा शाले परि व्ययामसि ।
शीना हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् । अथर्ववेद सं० 6/106/3

[4] न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैन शपथ अश्नुते । अथर्ववेद 19/38/1

[5] अग्निर्वषमहेर्नरधात् सोम निरंणयीत् । दंष्टारमन्वगाद् विषमहिंरमृत । अथर्ववेद 1014/26

[6] अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः । अथर्ववेद 3/31/6

केन्द्र हमें प्रकृति में दिखता है। इस सूर्य कि अग्नि का प्रयोग ताप के रूप में चिकित्सा जगत में होता है। अग्नि सभी प्राणधारी के शरीर को खाने वाले रोगाणुओं को नष्ट कर देता है।[7]

भौतिक अग्नि से चिकित्सा

अथर्ववेद में अग्नि के तेज से शरीर के दोषों को समाप्त करने की कामान की गयी है।[8]

कीड़ों को भौतिक अग्नि के द्वारा जलाकर नष्ट करने की बात कही गयी है। रोगों को फैलाने वाले कीड़ों को नष्ट करने से रोगों की उत्पत्ति का कारण ही समाप्त हो जाता है। मनुष्य रोग रहित जीवन यापन करता है।[9]

भौतिक अग्नि शरीर को पीड़ा देने वाले रोगों को नष्ट करता है। भौतिक अग्नि ही शारीरिक अग्नि के रूप में बल को शरीर में स्थिर रखकर रोगों को उनके कारणों सहित समूल समाप्त कर देता है।[10]

(अग्नि) विद्वान् पुरुष के मन को शान्त करती है। इन के व्याकुल होने पर औषधि रूप है। इसका ज्ञान प्राप्त कर विद्वत् जन को अपनी रोग निवृत्ति करनी चाहिए।[11]

पुरुषों को चक्षु के दर्शन से अग्नि की सेवा करनी चाहिए। अग्नि का ध्यान करना चाहिए। अच्छे प्रकार से प्रकाशित अग्नि जिह्वा सहित हमारे हृदय में उदित होकर हमें निरोग बनाता है।[12]

भौतिक अग्नि का लोक प्रेरक सूर्य है। मनुष्य की सूर्य, अग्नि आदि युक्त औषधि सेवन से अपना शरीर और मानसिक बल बढाकर ईश्वर का आश्रय प्राप्त करें। अन्न आदि को प्राप्त कर सुख पूर्वक उपयोग करे।[13]

सूर्य चिकित्सा

सर्वप्रथम उत्पन्न हुयी सृष्टि और प्रलय के मध्य प्रकाश पृथ्वी पर रोगों का नाश करने योग्य होती है।[14]

सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी को सूची करता है। ऋतुओं के साथ समन्वय कर जल और वायु के साथ पृथ्वी के प्रत्येक जीवधारी के लिए रोग नाशक व शक्तिदायक राज्य स्थिर करता है ।[15]

सूर्य की सप्त रश्मियाँ

सूर्य के प्रकाश में सात प्रकार की रश्मियाँ होती है। यहाँ अथर्ववेद में सप्तरश्मौ शब्द का प्रयोग हुआ है। सूर्य द्वारा प्राप्त यह सात प्रकार की किरणें शुभ गुणों से युक्त होती है।[16]

प्रकाश को देने वाले लोक सूर्य इत्यादि होते हैं। यह स्वयं प्रकाश मान होते है। यह अपने प्रकाश से अप्रकाशित लोकों को प्रकाश देते हैं। अप्रकाशमान लोक जैसे पृथ्वी, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि में स्वयं अपना प्रकाश नहीं होता है। यह सूर्य आदि प्रकाशित लोक से प्रकाश ग्रहण कर उसे फैलाते है। इस प्रकार के विभाजन में दो लोक होते है। एक अप्रकाशित लोक और दूसरा प्रकाशित लोक होता है। प्रकाशित लोक की प्रदत्त किरणो से अप्रकाशित लोक प्रकाशित होता है।[17]

---

[7] यो भूतं च भव्यं च सर्वं यत्राधितिष्ठति । अथर्ववेद 10/08/01

[8] अग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच । अथर्व0 02/19/04

[9] सर्वेषां च क्रिमणां सर्वासां च क्रिमीणांम् ।
भिनद्यश्मंना शिरो दम्यग्निना मुखम् । अथर्ववेद 05/23/13

[10] सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः । अथर्ववेद 05/29/11

[11] ज्येष्ठध्न्यां जातो विचृतार्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् । अत्येनं नैषद् दुरितानि विश्व दीर्घायुत्वायं शतशारदाय । अथर्ववेद 06/111/02

[12] य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे ।
सं मे अग्निर्जिह्वाभिस्तु हृदयादधि । अथर्ववेद 06/76/01

[13] अद्याग्नेश् अद्य संवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तनिया पसः । अथर्ववेद 04/04/06

[14] आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं कैलासनाशनम् ।
अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् । अथर्ववेद 01/24/02

[15] उदंगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
चिक्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् । अथर्ववेद 02/08/01

[16] तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ अथर्ववेद 11/01/36

[17] सत्येनोत्तंभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतैर्नादित्यस्तिष्ठन्ति दिवि सोमी अधिश्रितः । 14/01/01

उदय होते समय सूर्य की किरणें पृथ्वी में स्थित कृमियों का नाश करें। अस्त होने वाली भी किरणें पृथ्वी पर उपस्थित कीटाणुओं का नाश कर आरोग्य प्रदान करने वाली होती है।[18]

सूर्य से उसके तेज के द्वारा शरीर के दोषों को निस्तेज करने की प्रार्थना की गयी है।[19]

सूर्य के नाशन शक्ति से रोग नाश करने की प्रार्थना की गयी है।[20]

सूर्य के दीपन शक्ति से शरीर में अग्नि प्रदीप्त कर रोग नाश की कामना की गयी है।[21] सूर्य के शोधन शक्ति के द्वारा शरीर को शुद्ध करने की बात कही गयी है।[22]

प्राकृतिक नियमानुसार प्रकाश लोक से सूर्य द्वारा सात किरणें मुख्य रूप से निकलती है। यह सातों किरणें शुक्ल, नील, पित, रक्त, हरित कपिश और चित वर्ण की होती है। यह सभी किरणे आपस मे मिलकर असंख्य अलग-2 रंगो की असंख्य किरणें चन्द्रमा को प्रकाशित करती है। यह असंख्य किरणे चन्द्रमा से परावर्तित होकर असंख्य गुणों साथ पृथ्वी पर आती है। इन्हीं असंख्य किरणों के कारण चन्द्रमा प्रकाशित होता है। चन्द्रमा द्वारा प्राप्त प्रकाश आरोग्य देता है।[23]

ज्वर आदि रोगों को नष्ट करने वाले विष का शमन करने वाले सूर्य की किरणों की अग्नि का प्रयोग करने की प्रार्थना रुद्र देव से की गयी है। मनुष्य कुपथ को छोड़कर रोगों और दोषों की समस्या से सुरक्षित रहें।[24]

सूर्य के किरणों के सम्पर्क में रहने को अमृत लोक में रहने के समान माना जाता है।[25] सूर्य सभी रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणुओं का नाशक माना जाता है। सूर्य के प्रकाश के सेवन से शरीर निरोग और स्वस्थ बना रहता है।[26] सूर्य से प्राप्त होने वाली किरणों से जो ऊष्मा हमारे शरीर को प्राप्त होती है व शरीर के सभी रोगों को उत्पन्न करने वाले कीटाणु को समाप्त करती है।[27]

सूर्य के द्वारा सभी प्रकार के कीटाणुओं जो प्रत्यक्ष रूप से दिखायी पड़ रहे हो या परोक्ष रूप से मानव नेत्र से दिखायी न पड़ रहे हो सभी कृमियों को नष्ट करने का वर्णन अथर्ववेद में किया गया है।[28]

---

[18] उद्यन्नादित्यः क्रिमन हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः । अथर्ववेद 02/32/01
[19] प वर्षे यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु । अर्थव 02/21/05
[20] सूर्य यत्ते हरस्तेन तं प्रर्ति हर । अथर्ववेद 02/21/02
[21] सूर्य यत्तेऽचिस्तिेन तं प्रत्यर्च । अथर्ववेद 02/21/03
[22] सूर्य यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच । अथर्ववेद 02/21/04
[23] मूर्ध्वो देवस्य बृहतो अंधर्व । अथर्ववेद 19/06/16
[24] मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं सो दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् । अथर्ववेद 11/02/26
[25] इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥ अथर्ववेद - 8/1/1
[26] अङ्कान्त्संमङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता । अथर्ववेद 1/12/2
[27] पश्यम ते वीर्यै जातवेदः म गौ ब्रूहि यातुधार्नान् नृचक्षः । अथर्ववेद 1/8/5
[28] उत् पुरस्तात् सूर्ये एति विश्वदृष्टो अदृष्टा । दृष्टांश्च प्रभदृष्टांश्च सर्वोश्च प्रमृणन् क्रिमन् । अथर्ववेद 05/23/6

वैष्णव भक्ति आ संत लक्ष्मीनाथ गोसाँई

डॉ. कृष्ण मोहन ठाकुर*

पृष्ठभूमि–

संत–वैष्णवाचार्य लोकनिक कहब छनि जे साधनाक प्रभाव सँ भगवत्कृपा द्वारा सर्वविध मलिनता दूर भ' क' जिनक चित्त शुद्ध सत्व–आविर्भाव–योग्यता केँ प्राप्त क' लैत अछि आ जिनक चित्त मे शुद्धसत्व आविर्भूत भ' क' भक्तिरूप मे परिणत भ' चुकल अछि,[1] से लोकनि साधु, संत आकि महत्पुरुष कहबैत छथि।[2]

श्रीमद्भागवत महापुराण केँ श्रीहरिक साक्षात् शबदमयी मूर्ति[3] साक्षात् परब्रह्मक श्रीविग्रह[4], श्रीमद्भागवतक रूप मे साक्षात् श्रीकृष्ण[5], वेदरूप कल्पवृक्षक परिपक्व फल; अमृतरस सँ परिपूर्ण;[6] समस्त पुराणक तिलक एवम् परमहंस संहिता[7] आदि कहल गेल अछि। एहि 'पुराणममलं' आ 'वैष्णवानां धनं' रूप महापुराण मे ऋषभदेवजी अपन पुत्रा लोकनि केँ उपदेश दैत कहने छथि जे महत्पुरुष वैह छथि जे समानचित्त, परमशान्त, क्रोधहीन, सभक हितचिन्तक आ सदाचार–सम्पन्न होथि।[8] ओ लोकनि प्रशान्त, भगवत्–निष्ठाबुद्धियुक्त, अदोषदर्शी आदि होइत छथि। भगवत्प्रीतिए केँ ओ लोकनि परमपुरुषार्थ मानैत छथि। साधु–महत्पुरुष लोकनि मायातीत होइत छथि, माया हुनका लोकनिक सोझाँ नहि आबि सकैत अछि। एहने साधु–संत–भक्तादिक विषय मे स्वयम् श्रीकृष्ण कहने छथि जे ओ (अर्थात् श्रीकृष्ण) स्वयम् हिनका लोकनिक अनुगमन करैत छथि।[9] तेँ श्रीकृष्णक कहब छलनि जे हुनका सँ बेसी हुनक भक्त लोकनिक (अभिप्राय साधु, वैष्णव, महत्पुरुष लोकनिक) पूजा कयल जाय। 'भदभक्ताः यत्रा गायन्ति तत्रा तिष्ठामि नारद' सन उद्घोष–वाक्य सेहो यैह सिद्ध करैत अछि जे भक्त, साधु–संत, महत्पुरुष लोकनिक महिमा ईश्वरक महिमा सँ निश्चये बेसी अछि। तेँ साधु–संत लोकनिक महिमाक विषय मे किछु कहब एकटा असीम आकि विराट केँ ससीम अथवा लघु करब थिक। ई काज परम दुष्कर अछि जे कि ने तँ सम्भव अछि आ ने उचित। जहिना 'हरि गुण लिख्या न जाय'[10] सत्य थिक तहिना 'अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः[11] (अर्थात् ई साधुसंग सभक लेल परमलाभ थिक) सेहो सत्य थिक। महर्षि वेदव्यास तँ साधु–संगक महिमा केँ एकटा अप्रतिम स्तर प्रदान कयलनि जाहि क्रम मे ओ कहलनि जेμ

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा।।[12]

(अर्थात् जेना अग्नि देवताक आश्रय मे शीत, भय, अन्धकारादि नष्ट भ' जाइत अछि तहिना साधु लोकनिक आश्रय मे जीवक कर्मजड़ता, संसार–भय आ संसारमूलक अज्ञान–अविधा नष्ट भ' जाइत अछि।)

एवंक्रमे साधुक महिमा–गान करैत श्रीकृष्ण कहलनि जे एहि घोर संसार–सागर सँ पारगमन हेतु संत एकटा दृढ़ नाह छथि, वएह परम आश्रय छथि, हमरा (अर्थात् श्रीकृष्ण केँ) देखबाक आ देखेबाक हेतु अन्तर्दृष्टि दैत छथि, अनुग्रहशील देवता छथि, हमर प्रियतम आत्मा छथि आ अनुग्रहशील संतक रूप मे विद्यमान रहैत छी।[13]

साधु–संत–महिमाक निमित्त एक दिस जतय एतेक गम्भीर आ गरिमामय विचार प्रतिष्ठित अछि ततय दोसर दिस हिनक साहित्यिक कृति आकि सामाजिक अवदानक समेकित मूल्यांकन करब निश्चये असम्भव काज अछि। जँ ई किंचितो मात्राा मे सम्भव भ' सकत तँ मात्रा हरि–गुरु–संत–साधु–महत्पुरुषे लोकनिक कृपा सँ। ताहिए कृपाशक्ति–मात्रा सँ हम एहि विवेचना मे अग्रसर भ' सकब। ताहि कृपावशात् अनंत श्रीविभूषित, प्रायः स्मरणीय, संतशिरोमणि, कृपामूर्ति, करुणा–विग्रह संत श्रीलक्ष्मीनाथ गोसाँइक युगल चरण मे दण्डवत्–प्रणाम करैत हुनक साहित्य केँ अपन अल्पमतिक संग बूझय चाहि रहल छी। हिनक विराट साहित्य–सम्पदा केँ सम्यक्रूपेण बुझबाक ने तँ हमरा ततेक योग्यता अछि आ ने ततेक बौद्धिक सामर्थ्य। तथापि हम हिनक साहित्य–सम्पदा केँ वैष्णव–भक्तिक आलोक मे देखबाक–जानबाक एकटा बालसुलभ चेष्टा मात्रा क' रहल छी। तेँ हम अपन सीमा आ सुविधानुसार शीर्षक राखल अछि 'वैष्णव–भक्ति आ संत लक्ष्मीनाथ गोसाँइ'।

---

* वरीय सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, शैक्षणिक परिसर, बी.एन.एम.यू, मधेपुरा, बिहार, पिन–852128
मो– 9334924753

गोसाँइजीक संक्षिप्त जीवनी–

परम वीतरागी संत श्री लक्ष्मीनाथ गोसाँइक जन्म सुपौल जिला (मिथिला, बिहार)क परसरमा नामक गाम मे 1793 ई. मे भेलनि छलनि। हिनक नाम राखल गेल लक्ष्मीनाथ झा। हिनक पिताक नाम पं. बच्चा झा आ माताक नाम निर्मला देवी छलनि। हिनक मूल कुजिलबार दिगौन आ गोत्रा कात्यायन छलनि। बाल्यकाल मे श्री गोसाँइजी पं. श्री रत्ते झा (जोंकी, महिनाथपुर) सँ ज्योतिष, तन्त्राशास्त्रा आदिक अध्ययन कयल। माता–पिताक प्रशन्नताक हेतु हुनक आदेशानुसार कहुआ ग्राम निवासी शोखादत्त ठाकुरक सुपुत्राी माधवी देवी सँ हिनक विवाह भेलनि। मुदा गृहस्थ जीवन मे ई बेसी दिन नहि रहि सकलाह। शीघ्रहि ओ गृहत्याग क' दिव्य लक्ष्य–प्राप्तिक अन्वेषण मे निकलि गेलाह। तदुपरांत योगीराज श्री लम्बानाथ जीक शरणागत भेलाह आ हिनक शिष्यत्व ग्रहण कयलाह। हिनकहि सन्निधि मे श्री गोसाँइजी योगसाधनाक विभिन्न क्रियासभक ज्ञान अर्जित कयल।

अपन परिव्रजनक क्रम मे रहुआ, बनगाँव, ठेंगहा, लखनौर, सिंघिया, फैटिकी, फुलहर, शकरपुरा प्रभृति स्थान पर किछु–किछु दिन रहि क' साधना–भजनादि कयल। एहिए क्रम मे हिनक साहित्य–साधना सेहो चलैत रहलनि। एहि साधना मे श्री गोसाँइजी ब्रजभाषा आ मैथिली मे मारिते रास भक्ति–पद, सरस–पद सभक रचना कयल। अपन सम्पूर्ण जीवन एकटा अमानी–अकिंचन संतक रूप मे व्यतीत कयल। हरि–कथा, हरि–सेवा, हरि–भजन, दीन–दुखियाक मदति आदिक अतिरिक्त हिनका लेल किछुओ महत्वपूर्ण नहि छल। करुणाविग्रह, दीनदयालु, वैराग्यमूर्ति संत–वैष्णवसेवी श्री गोसाँइजी 1872 ई. मे 79 वर्षक अवस्था मे अपन स्थूल शरीर कें त्यागि, अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परात्पर ब्रह्म, सच्चिदानन्द घन श्रीकृष्णक शरण मे चलि गेलाह।

साहित्य–रचना–

संत श्री लक्ष्मीनाथ गोसाँइ रचित ग्रन्थ–सभ अछिμ गीतावली, विवेक रत्नावली (दुनू प्रकाशित), श्रीकृष्ण रत्नावली, योगसार समुच्चय, अकुलागम तंत्रा, बन्दी मोचन, मोह–मुद्गर (पाँचहु अप्रकाशित)।[14] हिनक साहित्यिक अवदान मे प्रमुख अछि हिनक पद सभ। अद्यावधि हिनक 745टा पद संग्रहित–प्रकाशित अछि। हिनक पद सभक संकलन दू ठाम सँ प्रकाशित अछिμ बनगाँव सँ आ जमशेदपुर सँ। जमशेदपुर (झारखण्ड) सँ प्रकाशित संस्करणक नाम अछि 'गीतावली' (श्रीमद्गोस्वामी लक्ष्मीनाथ परमहंस विरचित गीतावली) आ बनगाँव (सहरसा, मिथिला) सँ प्रकाशित संस्करणक नाम अछि 'भजनावली' (श्रीमद्गोस्वामी लक्ष्मीनाथ परमहंस विरचित भजनावली)। एहि 'गीतावली' आ 'भजनावली' मे तत्वतः कोनहु भेद नहि अछि। दुनूक सम्पादक एकहि गोटे छथि– (स्व.) पं. छेदी झा 'द्विजवर'। गीत अथवा भजनक संख्या–क्रमादि सेहो एकसमान अछि, मुदा दुनू पुस्तकक दू नाम अछि। एकर की औचित्य? लगैत अछि जे दू ठामक दू प्रकाशक होयबाक कारणें दू फराक नाम राखि देल गेल होयत। मुदा ताहू सँ बेसी अचरजक बात ई अछि जे हिनक रचना पर ई नहि विचार कयल गेल जे ई रचना सभ गीत कोटिक अछि आकि भजन कोटिक। हमरा जनैत हिनक रचना 'पद' कोटिक अछि तें हिनक रचना–संग्रह कें 'पदावली' कहब बेसी उचित छल।

जमशेदपुर संस्करणक गीतावली पुस्तकक अद्यावधि तीन संस्करण प्रकाशित भेल अछि, क्रमशः 1969 ई., 1984 ई. आ 2015 ई. मे। तीनू संस्करणक दू–दू हजार प्रति छपल। तें जमशेदपुर संस्करण अद्यावधि कुल छओ हजार प्रति छपि चुकल अछि। बनगाँव संस्करणक भजनावलीक अद्यावधि दू संस्करण प्रकाशित भेल अछि, क्रमशः 2002 ई. आ 2018 ई. मे। दुनू बेर एक–एक हजार प्रति छपल। तें बनगाँव संस्करण अद्यावधि दू हजार प्रति छपि चुकल अछि। अभिप्राय ई जे जमशेदपुर आ बनगाँव संस्करण मिला क' एहि पोथीक 8000 प्रति छपि चुकल अछि। ई संख्या स्वमेव एकटा अटूट अभिलेख सन अछि। एहि अभिलेख पर हमरा लोकनि सदति गर्व करबाक स्थिति मे छी। वस्तुतः हमरा लोकनि कविपूजक समाज छी। कविक प्रतिष्ठा जतेक हमरा लोकनिक बीच अछि से यथेष्ठ रूप सँ संतोषप्रद अछि। हमर विद्यापति, लक्ष्मीनाथ गोसाँइ, चन्दाझा, स्नेहलता, मोदलता, बाबा साहेब राम दास प्रभृति संतकवि, भक्तकवि एकर मजगुत प्रमाण छथि।

जमशेदपुर संस्करणक (गीतावलीक) अद्यतन प्रकाशन मे गोसाँइजीक कुल 745टा पद संकलित अछि। एहि मे लगभग 500 पद कृष्ण आ कृष्ण–भक्ति सँ सम्बन्धित अछि आ लगभग 200 पद राम आ राम–भक्ति सँ सम्बन्धित अछि। शेष मे गुरु, हनुमान, राधा, जानकी, शबरी, अक्रूर, केवट, शिव, निर्गुण ब्रह्म, गंगा, ऋतुगीत, प्राती, सोहर, बधाइ, महेशवाणी, नचारी, काशी, जगदम्बा भगवती आदिक पद रचित अछि।

मिथिला मे आकि मैथिली साहित्य मे संत आ हुनक साहित्य केन्द्रित काज सभ कम भेल अछि। जेहो भेल अछि ताहि मे संकलन स्तरक काज बेसी भेल अछि। मूल्यांकन स्तरक काज तँ मिथिलाक संत–साहित्य मे नितान्त कम भेल अछि। वस्तुतः संत–साहित्यक मूल्यांकनक निकष भिन्न प्रकारक होइत अछि जे कि प्रगतिशील साहित्य आकि आधुनिक साहित्यक मूल्यांकन सँ सर्वथा भिन्न प्रकारक अछि। तें एकर मूल्यांकन अथवा आलोचना

प्रगतिशील साहित्य जकाँ सम्भव नहि अछि। ई उचित सेहो नहि होयत। मिथिला सँ बाहरक संत–साहित्य मे बेस काज सभ भेल अछि। एहि क्रम मे कबीर (हजारी प्रसाद द्विवेदी), चैतन्यदेव (सुन्दरानन्द विद्याविनोद), चैतन्य चरितावली (प्रभुदत्त ब्रह्मचारी), व्रज के रसिकाचार्य, व्रज के संत (अवध बिहारी लाल कपूर), मानस का हंस, खंजन नयन (अमृत लाल नागर), विष्णुप्रिया, यशोधरा (मैथिली शरण गुप्त), गौरप्रिया (सुमति क्षेत्रामाडे), गौरगणोद्देश दीपिका (कवि कर्णपूर), व्रज के परिकर (डॉ. गिरिराज), सूरमाकुंज एवं उसके आचार्य (प्रेमदास शास्त्री) प्रभृति असंख्य काज सभ भेल अछि। एक अतिरिक्त संत ज्ञानेश्वर (जगमोहन लाल चतुर्वेदी), संत तुकाराम (लक्ष्मण नारायण गर्दे), भक्तकवि व्यासजी (वासुदेव गोस्वामी), भक्तमाल (नाभादास), श्रीहित चरित्रा (गोपाल प्रसाद शर्मा), सूरदास, तुलसीदास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता (श्री वेंकटेश्वर प्रेस), भक्त चरितांक (गीता प्रेस) प्रभृति काज तँ आजुक संत–साहित्य लेल संजीवनी सदृश सिद्ध होइत अछि। एहि क्रम मे बंगाल मे वैष्णव आन्दोलन आ तकर समर्थ प्रतिफल–रूप संत–साहित्य, आलवार संत एवम् वैष्णव आचार्य लोकनि केन्द्रित साहित्य–सम्पदा एखनहु भारतीय संत–साहित्यक दृढ़ स्तम्भ सन अछि।

मुदा मिथिला मे एतत्संदर्भित सम्पदा ततेक क्षीणकाय अछि जे उल्लेख करबा मे संकोच होइत अछि। तथापि स्नेहलता (योगानन्द झा), लक्ष्मीनाथ गोसाँइ (खुशीलाल झा), लक्ष्मीनाथ गोसाँइ (महाकाव्य, अरविन्द मिश्र नीरज), चैतन्य चन्द्रायण (रामचन्द्र मिश्र 'मधुकर'), महर्षि मेहीं दास, संत कारू खिरहर, बाबा साहेब राम दास, नवललीलामृतम् (राधेश्याम दास) प्रभृति काज सभ अभरैत रहल अछि। मैथिली मे एहि प्रकारक काजक सर्वदा उपेक्षा होइत रहल अछि। पारम्परिक साहित्य मे काज करय सँ बेसी सम्मानजनक आ सुविधाजनक काज बूझल जाइत अछि आधुनिक साहित्य मे काज करब। तेँ सगर मिथिला मे मैथिलीक कोनहु रामायण ततेक लोकप्रिय नहि भेल। तेँ ने आइ धरि मैथिलीक कोनहु रामायणक एकहुटा टीका–विवृति आदि नहि लिखल गेल। एतय तँ रामायणक आकि सीतायनक लेखने–प्रकाशन पर हमरा लोकनि मुग्ध छी, संतुष्ट छी। तेँ एतय विनय–पत्रिाका (तुलसीदास) आकि विरह–पदावली (सूरदास), दोहावली (तुलसीदास), कवितावली (तुलसीदास), श्रीकृष्ण–माधुरी (सूरदास) सन साहित्यिक काजक अपेक्षा कोना क' सकैत छी? तेहन स्थिति मे संत लक्ष्मीनाथ गोसाँइ पर डॉ. खुशी लाल झा आकि अरविन्द मिश्र 'नीरज'क काज निश्चये संत–साहित्यक क्रम मे एकटा मजगुत आधार प्रदान करैत अछि।

भक्तिमार्ग आ श्री गोसाँइजी–

गीतावलीक भूमिका मे पं. छेदी झा 'द्विजवर' श्री गोसाँइजीक संग चलैत 'भजनियाँ' आ 'किरतनियाँ'क चर्च कयने छथि। अभिप्राय जे गोसाँइजीक मण्डली मे 'भजन' आ 'कीर्तन' होइत छल। वैष्णवोपासना मे एहि दुनू कृत्यक दू अर्थ आ अभिप्राय अछि। मुदा एहि भक्तिमार्ग मे दुनू आवश्यक कृत्य सन प्रचलित अछि। कहब आवश्यक अछि जे 'भजन' आ 'कीर्तन' दुनू दू प्रकारक आध्यात्मिक कृत्य लेल व्यवहृत होबयबला शब्द अछि। भजन (भज्+ल्युट्)क अर्थ अछि सेवा, आराधना, पूजा आदि। 'भज् धातु सेवायाम्'क ब्याजेँ 'भजन' सेवा–आराधना प्रधान कृत्य थिक। कीर्तन (कृत+ल्युट्)क अर्थ होइछ कथन, वर्णन, कीर्तिगायन आदि। 'कृत कथने'क ब्याजेँ 'कीर्तन', अपन आराध्यक कीर्तिक गायन प्रधान कृत्य अछि। गोसाँइजीक पद मे 'भजन' आ 'कीर्तन' दुनूक महिमा वर्णित अछि। ई पक्ष सेहो हिनका 'संतकवि' सिद्ध करैत अछि। तेँ हिनका मात्रा 'भक्तकवि' मानब उचित नहि लगैत अछि।

परमवीतरागी संत लक्ष्मीनाथ गोसाँइक समय छनि 1793 सँ 1872 ई.। ई समय कबीर (1398–1518 ई.), रूप गोस्वामी (1483–1564 ई.), चैतन्यदेव (1486–1534 ई.), सनातन गोस्वामी (1488–1558 ई.), मीरा (1498–1546 ई.), तुलसीदास (1511–1623 ई.), जीव गोस्वामी (1513–1598 ई.), बलदेव विद्याभूषण (1718–1808 ई.) केर बादक समय अछि। ताधरि श्रीचैतन्यदेवक दर्शन 'अचिन्त्यभेदाभेद' स्थापित भ' चुकल छल, वेदान्त दर्शनक सर्वथा नवीन भाष्य– 'गोविन्द भाष्य' (भाष्यकार– बलदेव विद्याभूषण) रचल जा चुकल छल, प्रेमाभक्ति–अनन्याभक्ति–उत्तमाभक्तिक दर्शनिक स्थापना आ व्याख्या सेहो भ' चुकल छल, जे कि वैष्णव–दर्शन आ भक्ति–सम्प्रदाय लेल सर्वथा नव आ अपेक्षाकृत बेसी व्यावहारिक दर्शन छल। चैतन्य सम्प्रदाय अथवा गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय अपन स्वतंत्रा आस्तित्व सिद्ध क' चुकल छल जकर सिद्ध–प्रणाली आ साधन–प्रणालीक सूक्ष्म वैज्ञानिक पक्ष सेहो पाठक–साधक समाजक सोझाँ आबि चुकल छल। श्रीचैतन्य देव प्रवर्तित अनन्याभक्ति, उत्तमाभक्ति आकि रागानुगाभक्ति अपन उपजीव्य रूप मे आ प्रमाण–ग्रंथक रूप मे श्रीमद्भागवत महापुराण आ श्रीमद्भगवद्गीता केँ स्वीकार कयने छल। एहि अनन्या भक्ति केँ श्रीमद्भगवद्गीता सँ समर्थन भेटि गेल छलैक, जकर विकसित रूप बलदेव विद्याभूषण धरि आबि चुकल छल। एवंक्रमे गीताक श्लोक सभ–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।[15]
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।[16]

एहि पृष्ठभूमि सँ पल्लवित–पुष्पित भेल 'अनन्याभक्ति' 18म शताब्दी धरि अबैत–अबैत 'उत्तमाभक्ति' रूप मे अपन प्रौढ़त्व सिद्ध क' चुकल छल, जकर सैद्धान्तिक स्थापना आ अनुमोदन भक्तिरसामृतसिन्धु (श्री रूप गोस्वामी)क एहि श्लोक द्वारा द्वारा भ' चुकल छल–

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलम् भक्तिरुत्तमाः।।[17]

एहि उत्तमा भक्ति केँ रागानुगा भक्ति नाम सँ सेहो जानल जाय लागल छल। एहि भक्तिक्रम–विकास मे भगवानक नाम–रूप–लीला आ धामक एकता, हरि–गुरु–वैष्णव आ भागवतक एकता, भक्ति–भक्त–भगवंत आ गुरुक एकता प्रभृति औपसनिक भावना आ तदनुकूल भक्तिकृत्य सभ सेहो अपन सैद्धान्तिक आ व्यावहारिक अनुमोदन प्राप्त क' चुकल छल। ई ऐक्य भावना एहि भक्तिमार्गक प्राणतत्व सन स्वीकृत छल। आचार्य लोकनिक वाणीग्रंथ सेहो आदेश क' रहल छल–

भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर्नाम बपु एक।
इनके पद वन्दन किए नाशत बिघ्न अनेक।।

एहि शास्त्राादेशक आलोक मे–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा।।[18]

श्रीचैतन्यदेव आ हुनक परवर्त्ती वैष्णवाचार्य लोकनि द्वारा 'कीर्तन' नहि, 'नाम–संकीर्तन' केँ भगवद्भक्ति–प्राप्तिक एकटा प्रबल साधन रूप मे स्वीकृति भेटि चुकल छल। परमहंस संहिता श्रीमद्भागवत महापुराणक एहि आदेश आ निर्णयक अनुसार–

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगीनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्।।[19]

आओर– **कृते यद्ध्यायते विष्णुं त्रोतायां यजतो मखैः।**
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात्।।[20]

आदि शास्त्राादेशक आलोक मे 'नाम–संकीर्तन दर्शन' अनुमोदित–स्थापित भ' गेल छल। श्रीचैतन्यदेव तँ संकीर्तन करबाक एकटा व्यवस्था सेहो देलनि जाहि मे विनम्रता, सहिष्णुता, अमानीपना आदि सद्गुण केँ महत्वपूर्ण कहलनि–

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानीनां मानदेनः कीर्तनीयः सदा हरिः।।[21]

एहि साधकोचित अनुभव केँ श्री सनातन गोस्वामी (1488–1558 ई.)नाम–संकीर्तन केँ श्री कृष्णप्रेमसम्पत्ति प्राप्तिक बलिष्ठ साधन पर्यन्त कहलनि–

नामसंकीर्तन प्रोक्तं कृष्णस्य प्रेम सम्पदि।
बलिष्ठं साधनं श्रेष्ठं परमाकर्षक मंत्रावत्।।[22]

उपरोक्त समस्त आदेश–निर्णयादि केँ पालन करैत नाम–संकीर्तन केँ सर्वजनसुलभ बनयबा मे श्रीचैतन्यदेवक नाम आ अवदान सर्वोपरि छनि। 'नाम–संकीर्तन' अवधारणाक ई आदि पुरुष भेलाह। तेँ हिनका 'संकीर्तनक पितर' सेहो कहल गेलनि–

आजानुलम्बित भुजौ कनकावदातौ
संकीर्तनैक पितरौ कमलायताक्षौ।
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्मपालौ
वन्दे जगाप्रियकरौ करुणावतारौ।।[23]

एहि क्रम मे 'नाम–संकीर्तन' केँ साधन मानि, प्रेम केँ पंचम पुरुषार्थ कहल गेल। यैह भगवत्प्रेम एहि भक्ति–मार्गक काम्य छल। कवि कर्णपूर महाशय अपन भाव एहि प्रकारेँ व्यक्त कयल–

आराध्यो भगवान ब्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावनः
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेन या कल्पिता।

शास्त्राम् भागवतम् प्रमाणममलं प्रेमापुमर्थो महान्
श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्राादरो न परः।।[24]

श्रीचैतन्य देवक एहि शुद्धाभक्ति–प्रेमाभक्ति कें हुनक परवर्त्ती आचार्य श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी एहि प्रकारें कहलनि–

शुद्ध प्रेम सुखसिन्धु, पाइ तार एक बिन्दु
सेइ बिन्दु जगत डुबाय।
कहिवार योग्य नहे, तथापि बाउले कहे
कहिले वा केवा पातियाय।।[25]

एहि प्रकारें भारतीय दर्शन मे आ भारतीय जनजीवन मे भगवद्भक्ति आ नाम–संकीर्तन अपन समस्त औपासनिक विशिष्टताक संग निरन्तर विकासमान छल। उपासनागत एहि विशिष्टता आ विकासक उदाहरणरूप मे अनेक पद सभ गोसाँइजीक रचना मे भेटैत अछि। तकर अछैत हिनका मात्रा योगी, चमत्कारी, सिद्ध, किम्वन्दतीक भरल संत आदि रूप मे चित्रित करबाक की प्रयोजन आ की उद्देश्य छल से स्पष्ट नहि होइत अछि। एहि प्रकारें की सिद्ध कयल जा रहल छल से ने कहि! जखन कि खगता एहि बातक छलैक जे हिनक उपासना, हिनक साधन–साध्य विचार, हिनक वैष्णवता, हिनक भक्ति आ भक्तिभार्गीय विकास–अवदानादि कें स्थापित–व्याख्यायित कयल जाइत। भक्तिमार्गीय विवेचना–पद्धति सँ हिनक पद सभक संगहि हिनकहु विवेचना कयल जाइत।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. पृ–817, श्रीमद्भागवत महापुराण (द्वितीय खण्ड)–11/17/27,महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं–2061,2004 ई.
2. पृ.–127, श्रीमद्वैष्णव–सिद्धान्त–रत्न संग्रह, श्याम दास, श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन, तृतीय संस्करण, 1983 ई.
3. पृ–52,माहात्म्य–3/62,श्रीमद्भागवत महापुराण, (प्रथम खंड) महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं–2061, 2004 ई.
4. पृ–53, माहात्म्य–3/74, ओतहि,
5. पृ–73, महात्म्य–6/30, ओतहि,
6. पृ–77, माहात्म्य–6/80, ओतहि,
7. पृ–77, माहात्म्य–6/82, ओतहि,
8. पृ–593, श्रीमद्भागवत महापुराण (प्रथम खण्ड)– 5/5/2, महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं– 2061, 2004 ई.
9. पृ–801,श्रीमद्भागवत महापुराण (द्वितीय खण्ड)–11/14/16,महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं–2061, 2004 ई.
10. पृ–96, कबीर ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली/पटना, 2017
11. पृ–959, श्रीमद्भागवत महापुराण (द्वितीय खण्ड)–12/10/7,महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं–2061, 2004 ई.
12. पृ–875, श्रीमद्भागवत महापुराण (द्वितीय खण्ड)– 11/26/31, ओतहि,
13. पृ–875, श्रीमद्भागवत महापुराण (द्वितीय खण्ड)– 11/26/32–34, ओतहि,
14. पृ.–34, गीतावली, परमहंस लक्ष्मीनाथ गोस्वामी समिति, जमशेदपुर, 2015 ई. (तृतीय संस्करण)
15. 9/22, श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर,
16. 18/65, ओतहि,
17. 1/1/11, श्रीरूप गोस्वामी प्रणीत भक्तिरसामृतसिन्धु, व्रजगौरव प्रकाशन, वृन्दावन, 2006 ई. (तृतीय संस्करण),
18. 38/126, वृहद्नारदीयपुराण
19. पृ.–182, श्रीमद्भागवत महापुराण (प्रथम खंड)– 2/1/11, महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं–2061, 2004 ई.
20. पृ.–924, श्रीमद्भागवत महापुराण (द्वितीय खण्ड)– 12/3/52, ओतहि,
21. श्लोक–3, महाप्रभु चैतन्यदेव प्रणीत शिक्षाष्टकम्, श्रीकृष्ण चैतन्य शास्त्रा मन्दिर, राधाकुण्ड, मथुरा उ.प्र., 1995 ई.
22. 2/3/164, श्रीसनातन गोस्वामी प्रणीत वृहद्भागवतामृत, श्रीहरिनाम संकीर्त्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन, 2002 ई., तृतीय संस्करण
23. 1/1/1, श्रीवृन्दावन दास ठाकुर प्रणीत श्रीचैतन्य भागवत, श्री कृष्णदास, कुसुम सरोवर बाले, मथुरा, उ.प्र., सं–2015
24. चैतन्य चन्दोदय नाटकम्, कविकर्णपूर महाशय प्रणीत,
25. 2/1/43, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रणीत श्रीचैतन्य चरितामृत, श्रीहरिनाम संकीर्त्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन, मथुरा, उ.प्र., 2001 ई., (पंचम संस्करण)

चुनावी राजनीति में पत्रकारिता की भूमिका

डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव*

सारांश –

पत्रकारिता आधुनिक युग का एक प्रमुख व्यवसाय है जिसमें समाचारों का एकत्रीकरण लिखना जानकारी एकत्रित करके पहुँचाना सम्पादित करना और सम्यक प्रस्तुतीकरण आदि सम्मिलित है। आज के युग में पत्रकारिता के भी अनेक माध्यम हो गये है। जैसे अखबार, पत्रिकायें, रेडियों, सोशल मीडिया, दूरदर्शन वेब–पत्रकारिता आदि। बदलते वक्त के साथ बाजारबाद और पत्रिकारिता के अन्तर्सम्बन्धों ने पत्रकारिता की विषय–वस्तु तथा प्रस्तुति शैली में व्यापक परिवर्तन किए। राजनीतिक संचार मानव–समाज का सुनियोजित तंत्र है। राजनीतिक संचार प्रणाली का ढांचा अपने सुपरिभाषित माध्यम के साथ मानव समाज के आवरण की तरह है। राजनीतिक संचार का प्रवाह गतिशील सामाजिक तथा विकास की दिशा एवं गति को निर्धारित करता है।

मुख्य शब्दः– पत्रकारिता, स्थानीय जनजीवन, राजनीतिक ,आतंरिक संबंध, मीडिया, सम्पादकीय, समाज

प्रस्तावना –

पत्रकार की गुणवत्ता तभी निखर सकती हैं, जब पूरी विवेक क्षमता के साथ वह एक बेहतर प्रस्तुति के लिय श्रम करें और उसके उद्देश्यों में अनुशासन एवं एकरूपता हो। इस हेतु श्रेष्ठ सामग्री का पूरी निष्ठा, निष्पक्षता तथा सकारात्मक चिंतन से चयन जितना जरूरी हो, उतनी ही जरूरी कुछ बातें हैं, जिनमें सर्व प्रमुख है तथ्य का विश्वसनीय होना। इसके साथ ही भाषा, शीर्षक समाचार से अत्याधुनिक एवं नवीनतम् जानकारी से पूर्णता महत्वपूर्ण तथ्य है। पत्रकारिता में उभरा संवाद तात्कालिक एवं कम आयु का रहता है जो हर दूसरे दिन किसी नये रूप में जन्म लेता है। पत्रकारिता की पहली शर्त है कि पाठकों के बीच जो कुछ लिखकर या दृश्यमान जाये वह सरल भाषा में हो। मीडिया या पत्रकारिता चूँकि संपूर्ण जन–जीवन के हालातों को जोड़ता है, अतः वह किसी एक वर्ग की आशा–आकांक्षाओं का पूरक नहीं रहता भले मीडिया संस्थान का संचालनकमंडल, उस क्षेत्र में पूँजी निवेश कर मीडिया तंत्र को स्थापित करे किन्तु उसके सद्भावी उद्देश्यों की पूर्ति करेन हुए मीडियाकर्मी को लोकधर्म को यानी खबरों की निष्पक्षता से जन–जुड़ाव की सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। यदि ऐसा करने में वह विफल होता है तथा परिणाम स्वरूप मीडिया में अविश्वास हुआ या उसकी गरिमा आहत हुई तो यह जन आक्रोश या जन–उपेक्षा का शिकार होकर क्षतिग्रस्त हो जाता है। उसे जनता के हर वर्ग से न्याय करना ही होगा और ऐसा न होने पर मीडिया या पत्रकारिता ही दोषी मानी जाती है। जैसा कि इन दिनांक इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं प्रिंट मीडिया में कभी –कभी सुना जाता है।

उद्देश्य–

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उदे्श्य वर्तमान समय में प्रत्रकारिता एवं राजनैतिक अतः संबंध एवं उपयोगिता को ज्ञात करना है। इसमें यह भी लक्षित रहा है कि राजनैतिक गतिविधियों में मीडिया की क्या भूमिका रही है।

परिकल्पना–

वर्तमान समय में राजनैतिक गतिविधियों को जनता तक पहुचाने नई विकास योजनाओं एवं राजनैतिक बदलाव की जानकारी का एक मात्र माध्यम मीडिया ही है।

शोध प्रविधि –

प्रस्तुत शोध प्रबंध में मुख्य रूप से द्वितीयक एवं तथ्यात्मक आकड़ों का उपयोग किया गया है। आवश्यकतानुसार प्राथमिक समकों का प्रयोग किया गया है।

* गेस्ट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म0प्र0)
मोः–8808694208, मेल आई डीः–ysurendra53@gmail.com

विश्लेषण –

मानवीय व्यवहार, खान–पान, व्यवसाय कारोबार, शिक्षा जातीय व्यवस्था समाजिक जीवन की चहलपहल जिनमें क्रीड़ा और कला के अतिरिक्त राजनैतिक, आर्थिक गतिविधियों है। मीडिया के माध्यम से जनता के बीच जाये तो वे विश्वनीय हों एवं मानव जाति के अहितकर न हों। मीडिया यानी पत्रकारिता को मानवता के संदर्भ में स्वेच्छाचारी या अत्याचारी नहीं कहलाना चाहिये। वह वर्ग समानता असमानता के बीच कोई अवांछित हथियार न बनें। यह समय खबरों के भीतर की खबरों की तथा नई तकनीकों के दौर का है। इसे ठीक से समझकर अधुनिक व्यवस्थाओं से टी.बी. एवं लेखन की पत्रकारिता को नित्य परिमार्जित करना होगा, तब ही वह व्यवस्था बाजार या समाज में स्वीकार्य होगी। मैंने एक संदर्भ हम और हमारी की पुस्तक में यह निवेदन नई पीढ़ी के पत्रकार साथियों से किया है कि समाचार पत्र जगत के अधिकारों की शक्ति के साथ–साथ अब समाचार पत्रों में कार्यरत् पर कर्तव्य का भी बड़ा बोझ है। उन्हें सत्य को हर कीमत पर ठीक से एवं गंभीरता के साथ प्रस्तुत करना हैं तथ्यों को संतुलित रूप से प्रस्तुत करना है तथा उसे मानवता के लिए प्रमाणिकता के साथ और पूर्णता के साथ प्रस्तुत करना है। व्यावसायिक पत्राकारिता में यह बहुत ही कठिन कार्य है। प्रेस कौंसिल या अम्बरडरमैन जैसी व्यवस्थाओं से जुड़कर प्रेस यदि अपनी स्वतंत्रता को खोता है तो यह समाचार पत्र जगत की अपनी गलतियों को खामियाजा होगा। अब यह पत्रकार पर निर्भर करेगा कि वह जिस व्यवसाय की पवित्रता से जुड़ा है उसकी स्वतंत्रता और शक्ति को वह किस तरह उतनी उचाई और पवित्रता से जोड़कर रखें, क्योंकि इस हेतु उसे प्रतिदिन किसी न किसी समाचार को बनाना है और उसमें शब्दों या मुहावरों का प्रयोग करना है।

आज बदलते आयाम में प्रिन्ट मीडिया एवं इलेक्ट्रनिका का समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण योजना है। पुस्तक में यह निवेदन नई पीढ़ी के पत्रकार साथियों से किया है कि समाचार पत्र जगत के अधिकारों की शक्ति के साथ–साथ अब समाचार पत्रों में कार्यरत् पत्रकारों पर कर्तव्य का भी बड़ा बोझ है। उन्हें सत्य को हर कीमत पर ठीक से एवं गंभीरता के साथ प्रस्तुत करना हैं तथ्यों को संतुलित रूप से प्रस्तुत करना है तथा उसे मानवता के लिए प्रमाणिकता के साथ और पूर्णता के साथ प्रस्तुत करना है। व्यावसायिक पत्रकारिता में यह बहुत ही कठिन कार्य हैं प्रेस कौंसिल या अम्बरडमैन जैसी व्यवस्थाओं से जुड़कर प्रेस यदि अपनी स्वतंत्रता को खोता है तो यह समाचार पत्र जगत की अपनी गलतियों का खामियाजा होगा। अब यह पत्रकार पर निर्भर करेगा कि वह जिस व्यवसाय की पवित्रता से जुड़ा है उसकी स्वतंत्रता और शक्ति को वह किसी तरह इतनी उँचाई और पवित्रता से जोड़कर रखें, क्योंकि इस हेतु उसे प्रतिदिन किसी न किसी समाचार को बनाना है और उसमें शब्दों या मुहावरों का प्रयोग करना है। ऐसा ही नहीं है कि इस बड़ी जिम्मेदारी या शब्दों के द्वंद में अपनी भीतर के पत्रकार को ही नष्ट कर ले। यदि उसे विजेता बनना है तो उसे पत्रकारिता के शब्द –संसार में जीना सीखना होगा, उसके शब्दों में सुधार की क्षमता पैदा करनी होगी, उसे स्वयं के पत्रकार से साक्षात्कार करने के लिए पत्रकारिता और उसकी परम्परा की हर शिक्षा लेनी होगी, इसकी परवाह किये बिना ही वह किसी डेस्कका इंचार्ज है। या उसकी प्रसिद्धि पर उसे कौन सराहेगा । उसे प्रजातंत्र के सार्वभौमिक स्वीकार्य सिद्धांतों और स्वयं पत्रकारिता के प्रति स्वयं को प्रतिबद्ध रखना होगा। यह एक आदर्श चुनौती हर पत्रकार के लिए वर्तमान समय के साथ आज खड़ी है। यदि आज का पत्रकार जापान के सूमो पहलवान की तरह भारी भरकम माहौल लेकर कलम को तलवार बनाकर हवा में तलवार लहराए या हवा में मुक्केबाजी करे तो शायद वह समाज का हितचिंतक बनने की बजाए समाज में कुप्रतिष्ठा अर्जित करेगा। अपने अतीत के प्रति गौरवान्वित भारतीय पत्रकारिता का मिशन राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में स्वतंत्रता आकाक्षी राष्ट्र का निर्माण था। वह राष्ट्र के उत्थान के लिए शक्तिशालियों की दासी बन उनकी चाटुकारिता में ही अपना हित देखती है। निश्चित ही इन भाव–विचारों के बीच आज के दौर में इस बात को भी नहीं नकारा जा सकता है कि युग के अनुकूल परिस्थितियाँ बनती और बिगड़ती हैं। पहले धर्मदण्ड राज्य व्यवस्था से ऊपर माना जाता था तथा वह राजा के कर्तव्यों के निर्धारण के साथ आवश्यता पड़ने पर उसके अनैतिक आचरण के विरुद्ध दण्ड भी देने की शक्ति रखता था, जबकि वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत सेक्युलर राज्य की अवधारणा ने धर्मदण्ड की शक्ति का ह्रास किया है, अब राज्य की लोकतांत्रिक व्यवथा में जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि (नेता) ही सर्वशक्तिमान है और राजनीतिक सत्ता सर्वोपरि है। भारतीय संविधान के तीन प्रमुख स्तम्भ हैं सत्ता चलाने वाले (एक्जिक्युटिव्ह), कानून बनाने वाले (लेजिस्लेटिव्ह) तथा न्याय देने वाले (ज्यूडिशिअरी)। इन तीन स्तम्भों के सहारे ही भारतीय राज्य व्यवस्था का सम्पूर्ण तानाबाना बुना हुआ है। मंत्री परिषद् कोई योजना या नियम बनाती है, उसकी अच्छाई–बुराई को जनता के

सामने रखना मीडिया की जिम्मेदारी है। जिसे वह अपने जन्मकाल से स्वतंत्र रूप से करती आ रही है। इसके बारे में भारतीय संविधान की 19वीं धारा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में अधिकार के अंतर्गत विस्तार से दिया गया है। इस अनुच्छेद ने मीडिया को सार्वभौमिक शक्ति प्रदान की है जिससे वह प्रत्येक स्थान पर अपनी पैनी नजर रखते हुए स्व विवेक के आधर पर घटना से सम्बन्धित सही–गलत का निर्णय कर सके। यह ओर बात है कि जाने–अनजाने मीडिया की इस नजर से अनेक भ्रष्ट लोग हर रोज आहत होते हैं। ऐसे लोग आए दिन माँग भी करते हैं कि मीडिया पर ऐंकुश लगना चाहिए। उनका तर्क है कि जब कानून का शिकंजा सभी पर कसा हुआ है फिर मीडिया क्यों उससे अछूती रहे? खासकर मीडिया और राजनीति के अंतर्सम्बन्धों को लेकर यह बात बार–बार उछाली जाती है।

15 अगस्त 1947 से आजाद गणतंत्र के रूप में भारत ने जिस शासन प्रणाली को स्वीकारा है वह जनता का जनता द्वारा जनता के लिए संचालित लोकतंत्रात्मक शासन है, जिसमें प्रगति के पथ पर पीछे छूट चुके वयक्ति की चिंता रखना और उसके हित में कार्य करने को सबसे अधिक वरीयता दी गई है। इस व्यवस्था में जनता से चुने गए प्रतिनिधि शासन का संचालन करते हैं, यह प्रणाली जन प्रतिनिधियों को अपार अधिकार प्रदत्त करती है। चूँकि मीडिया जनता के प्रति जबावदेह है इसलिए वह भारतीय समाज के लक्ष्य के प्रति समर्पित थी। तब की पत्रकारिता और आज की पत्रकारिता में तात्विक परिर्वन यही है कि आज वह खबरों के कारोबार का स्वरूप ले रही है। उसकी खबरों में देश की राजनीति कारोबार नई–पुरानी पीढ़ी अथवा समाज के हर घटक की गतिविधि का बिम्ब है। पत्रकारिता की इस स्थिति में यह बदलाव केवल भारत में नहीं है। जैसे–जैसे विश्व की सूना प्रौद्योगिकी विकसित हुई उसका ब्राड स्वरूप सम्पूर्ण विश्व में बनता गया है। भारतीय समाचार पत्र जगत में पाश्चात्य समाचार पत्र की तकनीकी अनुगमन ही नहीं हुआ अपितु वैचारिक घरातल पर भी बहुत कुछ स्वरूप स्वीकारने की स्थितियाँ बनीं धन और संचार की पाश्चात्य जीवन शैली से जुड़ी पत्रकारिता ने भारत की आजादी के पश्चात् तेजी से अपने पैर भारत में पसारे तथा धीरे–धीरे भारत को अपने उत्पादन ही नहीं विचारों तक का धरातल दे दिया। आज विश्व की बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बाजार यदि भारत बन चुका है तो यह स्थिति भी बन रही है कि भारतीय पत्रकारिता में विदेशी पूँजी का विनिमय हो। इस नये दौर से भारतीय समाज की आत्मा चिंतित जरूर हो रही है किन्तु कथित विदेशी मीडिया जिस दिन भारत के लोकतंत्र को अपनी लाठी से हाकेगा तब की स्थिति और क्या होगी? इसे सोचना आवश्यक है। 1975 का भारत का आपातकाल यदि राष्ट्रीय शोक था तो देश की स चौथी सत्ता के लिए वर्तमान के दौर से निर्मित हो रही नई चुनौतियाँ भी कम गंभीर नहीं है। हमारे स्वाधीन भारत के समाज और उसके संवैधानिक सिद्धांत जो पत्रकारिता की सफलता और व्यक्ति के स्वत्व–रक्षण की गारन्टी अथवा हित रक्षा का सबाल है उसे अक्षुण्ण रखना तथा कैसे रखा जाए? इस पर पुनर्विचार की अब महती आवश्यकता है।

मीडिया में प्रिंट हो या इलेक्ट्रानिक दोनों के विषय में जनमानस के बीच अनेक प्रकार के विचार सुनने को मिलते हैं, कोई इसे वर्तमान और भविष्य की दिशा तय करने वाला सशक्त माध्यम मानता है तो कुछ इसके बारे में ऐसी भी धारणा रखते हैं कि आजादी के बाद इसने अपना नैतिक स्तर खो दिया है। यह सिद्धांतों के लिए समर्पित नहीं, व्यक्ति सापेक्ष हो गई है। पत्रकारिता समाज व राष्ट्र की प्रबोधिनी न होकर बाहुबलियों और इलेक्टनॅनिक मीडिया द्वारा जो बड़े–बड़े खुलासे किये गये, वह समय–समय पर पत्रकार को मिली राजनेताओं की मदद–सूचना एवं सहयोग का परिणाम है। वस्तुतः पत्रकार को राजनेता से बने आपसी सम्बन्धों का लाभ जीवन भर मिलता है। एक पत्रकार उस नेता को जिसका उससे मित्रवत् व्यवहार है आवश्यकतानुसार उसे प्रोत्साहित करता है, उसके हित में समाचार लिखता है। जब पत्रकार कोई नकारात्म समाचार लिखता है तब भी वह अप्रत्यक्ष जनता का हित ही साध रहा होता है। आप राजनीति और मीडिया के इन अतर्सम्बन्धों को चाहें तो स्वाथ के सम्बन्ध ही कह सकते हैं बावजूद इसके यह नकारा नहीं जा सकता कि पत्रकार द्वारा धन–यश प्राप्ति के लिए किया गया प्रयास सदैव आमजन के हित में रहा है। जब एक नेता, दूसरे नेता की तथा प्रशासक–कर्मचारी दूसरे अधिकारी–कर्मचारी की खामियों, नीतियों, उनके काले कारनामों को उजागर करते हैं तब प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष वह जनहित से जुड़े विषयों को मीडिया में रखने का कार्य करते हैं।

स्वाधीनता आंदोलन के समय और उसके बाद भारत में मूल्यों के संरक्षण संवर्धन तथा उनकी स्थापना का कार्य मीडिया निरंतर कर रही है। यही उसे लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का संरक्षक बनाता है। जब तक भारत में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था रहेगी तब तक मीडिया और राजनीति में अन्तर्सम्बन्ध बने रहेंगे। इस पर कोई भी बहस की जाए वह अधूरी रहेगी।

पत्रकारिता और विचार के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। पत्रकारिता विचारों के संवहन का सबसे सशक्त माध्यम है। परन्तु पत्रकारिता की वैचारिकी की सबसे महत्वपूर्ण विशिष्टता है उसका समष्टिवादी स्वरूप। समष्टिवादी स्वभाव और संस्कार निरन्तरता में पत्रकारिता के साथ सदैव जीवन्त रहा है।

सन् 1977 में कोलकाता में जब जेम्स आगस्टस हिकी ने भारत में सबसे पहले प्रेस की स्थापना की और 1980 से बंगाल गजट एण्ड कैलकटा जनरल एडवरटाइजर नामक दो पन्नों का अखबार शुरू किया था तब और उसके बाद प्रकाशित समाचार पत्र–पत्रिकाएँ उदन्त मार्तण्ड हरिश्चन्द्र मैगजीन, सर्वहित कारक, प्रजाहित, बनारस अखबार, प्रजाहितेषी, सरस्वती, बाल बोधनी, भारत जीवन, हिन्दी प्रदीप, ब्राम्हण, हिन्दुस्तान, अभ्युदय, प्रताप, कैसरी, कलकत्ता समाचार, स्वतंत्र, विश्वमित्र, विजय, आज, विशाल भारत, त्याग भूमि, हिंदू पंच, जागरण, स्वराज, नसयुग, हरिजन सेवक, विश्वबन्धु, हिन्दू,राष्ट्रीयता, चिंगारी, जनयुग, सनमार्ग आदि ही क्यों न हों, प्रायः आजादी के पूर्व निकले इन सभी समाचार पत्र–पत्रिकाओं पर अपनी नजर गड़ाए रखते हैं तथा व्यवस्था परिवर्तन के बारे में लिखते हैं।

निष्कर्ष –

आज मीडिया के उद्देश्यों को लेकर दो तरह की विचारधाराएँ प्रचलित हैं। एक मीडिया को शुद्ध व्यवसाय मानते हैं तो दूसरा वर्ग इसे जनसंचार का शक्तिशाली माध्यम होने के कारण जनकल्याण कारक, नैतिक मूल्यों में अभिवर्ध्दाक, विश्व बन्धुत्व और विश्व शांति के लिये महत्वपूर्ण मानता है। दोनों के ही अपने–अपने तकै हैं। वस्तुतः इन तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान पत्रकारिता जहाँ व्यवसाय है वहीं परस्पर प्रेम, जानकारी और शक्ति बढ़ाने का माध्यम भी है। बोफोर्स, तेलगी, नोट कांड, भ्रष्टाचार से जुड़ी तमाम धांधलियाँ, भारत की सीमाओं में अवैध घुसपैठ, नकली करेन्सी, हवाला के जरिए धन का आवागमन, आतंवादी गतिविधियाँ और कुछ माह पूर्व आई लिबहान रपट ही क्यों न हो। समाचार पत्र–पत्रिकाओं से वर्तमान का अपने अंग में समाहित किये हुए था। सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप से पत्रकारिता ने अपनी रचना धर्मिता को एकरूपता में निरन्तरता प्रदान की है। इसी तथ्य को दृष्टिपथ में रखकर पत्रकारिता को संघर्ष की निरन्तरता का प्रतीक माना जाता है। अतीत के तथ्यों की व्याख्या वर्तमन की दृष्टि से करना समीचीन होता है। वर्तमान दृष्टि से अतीत की व्याख्या में सदैव नवीन तथ्यों के प्रकाश में आने की सम्भावना विद्यमान रहती है। नवीनता वर्तमान की जड़ता को तोड़ता है तथा ऐसे गद्यात्मक विचारों का सृजन करता है जिससे वर्तमान लाभान्वित होता है और इसी से अतीत की वर्तमान में उपादेयता निर्धारित होती है। अतीत से वर्तमान को जोड़ने की आवश्यकता इसीलिए अनिवार्य होती है। कोई भी नागरिक समाज अपने अतीत को विस्मित कर विकास के महत्तम शिखर को स्पर्श नहीं कर पाता है। पत्रकारिता और पत्रकारिता और राजनीति के संबंध रीवा संभाग में भी पारंभ से ही पाये गये है।। यहां पत्रकारिता से राजनीति की ओर जाने वाले बहुत से शिखर पुरुष हुए हैं, जिन्होंने न केवल पत्रकारिता में अपनी पहचान बनाई वरन् राजनीति में भी वे शिखर तक पहुँचे। रीवा संभाग में पत्रकारिता और राजनीति के संबंधों ने संभाग में विकास के लिए बड़ी भूमिका अदा की है यही नहीं रीवा संभाग में पत्रकारिता ने राजनीति के नये सिद्धांतों का भी प्रतिपादित किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

- डॉ. उपाध्याय, अनिल कुमार – पत्रकारिता और जनसंचार, सिद्धांत एवं विकास, भारती प्रकाशन, 2008
- डॉ. पाण्डेय, रवि प्रकाश, वैश्वीकरण एवं समाज, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005
- शर्मा, कुमद, भूमण्डलीयकरण और मीडिया, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, 2003
- डॉ. तिवारी, अर्जुन – आधुनिक पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन वारायणसी, 2004
- प्रो. हरिमोहन – सूचना प्रौद्योगिकी और जन माध्यम, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
- डॉ. एस़. अखिलेश, रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन रीवा 2004
- राजकिशोर – पत्रकारिता के नये परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2007
- सिंह निशांत – पत्रकारिता लेखन कला, ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2008
- गप्ता डॉ. यू.सी. – इलेक्ट्रानिक्स मीडिया एवं सूचना प्रोद्योगिकी अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2004
- वधवा, डॉ.एसः भारतीय राजनीति और प्रशासन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली 1989।
- मिश्र, डॉ.जे.एस.: राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, रवि प्रकाशन वाराणसी 2001।
- त्रिवेदी डॉ.आर.एस.एवं राम डॉ.एम.पी. भारतीय सरकार एवं राजनीति कालेज बुक डिपो जयुपर 1997।

सनातन एवं स्वास्थ्य

रेशमा*

सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) जिसे प्राचीन जीवित धर्मों में से एक माना जाता है अनेक आस्तिक एवं नास्तिक परम्पराओं को संदर्भित करता है। विश्व में धर्मों के रुप में अलग पहचान रखने वाली धर्म परम्पराएँ सनातन धर्म स्वास्थ्य कल्याण और आध्यात्मिकता पर अवलम्बित हैं। यह धर्म ***"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः"*** *अर्थात् सब लोग सुखी हों और सभी लोग निरोगी रहें। इस विचारधारा का परिपोषण करता है।*

वैदिक साहित्य के अनुशीलन से विदित होता है कि वेदपुराणादि आधारित सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) परम्परा वैदिक काल से ही केवल पूजा पाठ पर ही विशेष ध्यान न देकर अपितु स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहने के लिए जन–सामान्य के लिए सदैव प्रेरणादायक रही है। इसलिए ही यह परम्परा अन्न को ब्रह्म (परमतत्व) के रूप में स्वीकार करती है। उपनिषदों में अन्न को ब्रह्म माना गया है।[1]

सनातन धर्म में आहार को एक दिव्य आचरण माना गया है। यहां भोजन केवल पेट भरने का साधन मात्र नहीं है अपितु आत्मा और शरीर को शुद्ध करने का माध्यम है–

"अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुः भोक्ता देवो जनार्दनम्
एवं ध्यात्वा तथा ज्ञात्वा, अन्नं दोषो न लिप्यते।"[2]

अर्थात् अन्न ब्रह्मा है उसका सार (रस) विष्णु है और जो उसे ग्रहण करता है (भोक्ता) वह स्वयं महेश्वर है। अर्थात् यहाँ मनुष्य को भोजन के प्रति सम्मान करना सिखाया गया है।

वेद (ज्ञान) भारत में उत्पन्न पवित्र ग्रन्थों की एक विस्तृत श्रृंखला है। वेदों को ज्ञान के निर्विवाद साधन के रूप में माना जाता है। भोजन और आहार जीवन के तीन आधार स्तंभों, अर्थात् आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य के पालन को बनाए रखन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आहार मानव शरीर की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों अर्थात् सात्विक, राजसिक और तामसिक, के संतुलन को बनाए रखने में प्रभावी भूमिका निभाता है। चार वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) में से अथर्ववेद चिकित्सा विज्ञान और पारंपरिक आहार विधियों से सम्बन्धित है। आयुर्वेद, जिसमें स्वास्थ्य और कल्याण विज्ञान पर ज्ञान की प्रचुरता समाहित है, अथर्ववेद का उपवेद माना जाता है। ऋग्वेद में विभिन्न प्रकार की आहार विधि का वर्णन मिलता है।

आयुर्वेद और अथर्ववेद में, आहार का मुख्यतः मस्तिष्क और शरीर पर प्रभाव डालने के लिए चिंतन किया गया है। इस विश्वास के साथ कि भोजन को हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम कैसे बनाया जाए, हम पोषण को उपचार के स्रोत के रूप में उपयोग कर सकते हैं।

उत्तम स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आहार सबसे महत्वपूर्ण है और यदि यही आहार अनुचित तरीके से लिया जाए तो यह अनेक रोगों का मूल कारण बन जाता है।

मुख्य बिन्दुः– सनातन धर्म एवं आहार शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य एवं आहार।

परिचय

ऋग्वेद में खाद्यानों के नाम और भोजन विधियाँ मिलती हैं। देश भर में भोजन तैयार करने की विधियां पृथक्–पृथक् हैं और पारंपरिक भोजन अनेक वर्षों से तैयार किया जाता रहा है।

वैदिक आर्य शुद्ध सात्विक एवं पौष्टिक आहार ग्रहण करते थे, क्योंकि इससे मनुष्य का सत्व शुद्ध रहता था और स्मृति भी। साथ–साथ शरीर भी बलवान् रहता था। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती है अन्तःकरण शुद्ध होने से स्मृति निश्चल हो जाती है–

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।[3]

सनातन धर्म में माना गया है कि ईर्ष्या, क्रोध, और लोभ भाव के साथ ग्रहण किया हुआ भोजन कभी भी पचता नहीं है। वहीं भोजन के न पचने पर कई प्रकार के शारीरिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) में शरीर को मंदिर और आत्मा को उसमें निवास करने वाला ईश्वर माना जाता है। एक पवित्र मंदिर के समान शरीर को स्वस्थ और पवित्र रखना अति आवश्यक है। सनातन धर्म में भोजन शारीरिक पोषण

* शोध छात्रा, गृह विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

से बढ़कर है। यह मानसिक संतुलन, आध्यात्मिक उन्नति और सामुदायिक एकता का प्रतीक है जिसे 'पूर्ण ब्रह्मा' भी कहा गया है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि अन्न ही ब्रह्म है। सभी प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं उत्पन्न प्राणी अन्न से ही जीवित रहते है। अन्न की निन्दा न करें। अन्न का कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए।[4]

सनातन धर्म अहिंसा व करुणा के सिद्धान्त का पालन करते हुए शाकाहारी भोजन को बढ़ावा देता है। सनातन धर्म में मांसाहार को वर्जित माना गया है। जीवों को नुकसान पहुँचाए बिना मांस कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए उसे मांस के भक्षण से दूर रहना चाहिए। मनुष्य को किसी भी प्रकार के मांस का सेवन नहीं करना चाहिए। अधिकृत करने वाला, काटने वाला, वध करने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, परोसने वाला ये सभी हत्यारे हैं। ऐसे व्यक्ति से बड़ा कोई पापी नहीं है जो देवताओं या पूर्वजों को बलि अर्पित करने के अलावा, किसी और के मांस की कीमत पर अपने शरीर को समृद्ध बनाना चाहते हैं।

हिन्दू या जैन धर्म का एक और प्राचीन भारतीय धर्म निरपेक्ष ग्रन्थ ''तिरुक्कुरल'' अहिंसा और नैतिक शाकाहार पर जोर देता है। मूल रूप से दक्षिण भाषा तमिल में लिखा गया यह ग्रन्थ संयमित आहार को एक धार्मिक जीवन शैली बताता है और इसके पुलान मारूथल (मांस या मांस से परहेज) अध्याय में 251 से 260 तक 'मांसाहार'' की आलोचना करता है। इसमें कहा गया है ''वह कैसे दयालु हो सकता है, जो अपना मांस बढ़ाने के लिए दूसरे प्राणियों के मांस का भक्षण करता है।''[6]

सनातन आहार का मतलब ऐसा आहार जो प्राकृतिक, सात्विक और आयुर्वेदिक सिद्धान्तों पर आधारित हो। ऐसा भोजन शुद्धता, संतुलन और पोषण से भरपूर होता है।

भगवत गीता के अनुसार भोजन को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है : सात्विक, राजसिक और तामसिक।[7]

(1) सात्विक – सात्विक का अर्थ है– उत्तम सार। यह एक सचेत आध्यात्मिक और स्वस्थ जीवन के लिए सबसे शुद्ध भोजन है। यह शरीर को पोषण देता है और उसे शांत अवस्था में बनाए रखता है। आयुर्वेद के अनुसार यह शारीरिक शक्ति, स्वस्थ मन, अच्छी शारीरिक स्थिति और सहनशक्ति के लिए सबसे सरल आहार है। यह मन और शरीर को शांत और शुद्ध करता है। सात्विक भोजन से सच्चा स्वास्थ्य प्राप्त होता हैः एक स्वस्थ शरीर के ऊपर एक शांत मन, और उनके बीच जीवन शक्ति का एक निरंतर प्रवाह है। सात्विक आहार उन लोगों के लिए सर्वोत्तम है जो एक शांत, शांतिपूर्ण और ध्यानपूर्ण जीवन जीना चाहते हैं। सात्विक खाद्य पदार्थ ताजे फल, अंकुरित अनाज, मौसमी सब्जियां, मेवे, दूध, शहद आदि आते हैं। **''सात्विक भोजन को पवित्र और देवताओं को अर्पित करने योग्य माना जाता है।''**

(2) राजसिक आहार – राजसिक आहार आयुर्वेद के अनुसार, ऐसे खाद्य पदार्थ जो पित्त और वात दोषों को बढ़ाते हैं और क्रोध व अशांति को बढ़ाते हैं। ये अग्नि, बाह्य गतिशीलता, रचनात्मकता, आक्रामकता और उत्साह को अधिक उत्तेजित करते हैं। राजसिक आहार में बहुत अधिक मसालेदार, नमकीन और खट्टा भोजन शामिल होता है। राजसिक खाद्य पदार्थ मन–शरीर के संतुलन को बिगाड़ देते हैं और मन को बैचैन व बेकाबू बना देते हैं।

तामसिक आहार – तामसिक भोजन आलस्य, क्रोध और नकारात्मक विचार उत्पन्न करता है। तामसिक भोजन में तले और जमे हुए खाद्य पदार्थ, रात भर रखा हुआ भोजन (बासी भोजन), मांस, मछली, अंडे, प्याज, लहसुन, शराब आदि शामिल हैं। ये चयापचय को धीमा करके, सुन्नता और जड़ता को बढ़ाते हैं। इन तीन प्रकार के खाद्य पदार्थों में तामसिक भोजन सबसे अस्वस्थ्यकर है।

सनातन धर्म में भोजन संबंधी नियमों को भी ध्यान में रखा जाता था। भोजन बनाते व परोसते समय शुद्धता का विशेष ध्यान रखा जाता था।

''स्वच्छता सर्वधनं, स्वच्छता सर्वरोग हरम''

अर्थात् स्वच्छता ही सम्पूर्ण धन है। स्वच्छता के द्वारा ही समस्त रोगों को दूर किया जा सकता है। सनातन धर्म में अन्न को ब्रह्म का स्वरूप माना जाता है भोजन को ग्रहण करने से पहले आचमन किया जाता है तथा मन्त्रोच्चारण किया जाता है–

''अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकर प्राण वल्लभे।''

आयुर्वेद में ऋतुचर्या का भी वर्णन मिलता है प्रत्येक ऋतु के अनुसार आहार ग्रहण करना चाहिए। भोजन ऋतु के अनुसार विशिष्ट होना चाहिए, जिसे मौसमी–आहार कहा जाता है। भारत में छः अलग–2 ऋतुएँ होती है और आहार ऋतुओं के अनुसार होना चाहिए।

हमारे आहार में पाँच मूल तत्वों तत्वों (पृथ्वी, जल, आग, वायु और आकाश) का संतुलित सेवन होना चाहिए। ऐसे आहार को **''पंचमहाभूत आहार''** कहा जाता है।

सनातन एवं स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आज की प्रासंगिकता सनातन धर्म में विभिन्न प्रकार के आहार बताए गए हैं जिनका हमारे स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है और ये हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखते हैं।

आधुनिक युग में लोगों के पास आहार सम्बन्धी कोई उचित समय सारिणी नहीं है, कि उन्हें क्या खाना है? कब खाना है? कैसे खाना है? इसलिए लोगों को उचित जागरुकता की आवश्यकता है।

आधुनिक युग में फास्ट फूड और प्रोसेस्ड फूड का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप मोटापा, मधुमेह, हृदय रोग, कैंसर जैसी कई बीमारियां तेजी से बढ़ रही है। लोग चीनी और वसा युक्त भोजन का अधिक सेवन कर रहे हैं जबकि ताजे फल, सब्जियों और साबुत अनाज का सेवन कम कर रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

स्वस्थ संतुलित आहार न लेने से व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती जा रही है और व्यक्ति रोगों का आसानी से शिकार होता जा रहा है।

World Health Organization के अनुसार – जीवन भर स्वस्थ आहार लेने से सभी प्रकार के कुपोषण के साथ–साथ कई प्रकार के गैर संचारी रोगों और स्थितियों से बचाव में मदद मिलती है।

वर्तमान समय में समाज की प्रकृति में तेजी से बदलाव आया है। सात्विक आहार का स्थान प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों ने ले लिया है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है।

वहीं दूसरी ओर सनातन धर्म शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक और आध्यात्मिक पहलुओं पर जोर देता है। सनातन धर्म प्राचीन होने के साथ–साथ वैज्ञानिक भी है। इसमें बताए गए नियमों का सम्बन्ध सीधे तौर पर विज्ञान से जुड़ा होता है। सनातन धर्म में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक नियम बताए गए हैं जिसका पालन करके व्यक्ति लम्बे समय तक स्वस्थ बना रह सकता है।

आहार और स्वास्थ्य जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। जीव के तीन आधार स्तंभों, अर्थात् आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य, में से प्रथम को वेदों में सर्वाधिक महत्व दिया गया है और उसे सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इन त्रिगुणों का उचित, इष्टतम और कुशल उपयोग ही मानव शरीर को पूर्ण जीवन तक स्वस्थ समृद्ध शारीरिक और प्रतिरक्षात्मक शक्ति, रंग–रूप और पोषण प्रदान करता है। यह हमें प्रकृति के करीब लाता है और स्वस्थ जीवन जीने की प्रेरणा देता है। आज के युग में इसकी प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक है। इसलिए हमें सनातन धर्म की इस अमूल्य धरोहर को अपनाना चाहिए और आने वाली पीढ़ियों को इसके महत्व से अवगत कराना चाहिए।

सन्दर्भ

1. स योऽन्नं ब्रह्मेव्युपास्ते । छान्दोग्य उपनिषद् 7/9/2
   अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् । तैत्ति0 उप0 भृगु0 2/1
2. पद्मपुराण पाताल खण्ड 19/48
3. छान्दोग्य उपनिषद् 7/26/2
4. तैत्ति0उप0 2/7/1
5. तिरुक्कुरल 18/101
6. तिरुक्कुरल, पुलान मारुथल अध्याय 251–260
7. श्रीमद्भगवतगीता 17/7–10

भारत का विभाजन (1947) : ब्रिटिश नीतियों और भारतीय राजनीतिक मतभेदों का ऐतिहासिक अध्ययन

हिमांशु सिंह*

सारांश

भारत विभाजन, उपमहाद्वीप के इतिहास की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विडंबनापूर्ण घटना थी, जिसके तहत 15 अगस्त,1947 को ब्रिटिश भारत को दो स्वतंत्र देशों भारत और पाकिस्तान में बाँट दिया गया। इस विभाजन की पृष्ठभूमि में धार्मिक, राजनीतिक, और औपनिवेशिक नीतियों की संलिग्नता रही। मुख्य रूप से यह हिन्दू-मुस्लिम मतभेदों, ब्रिटिश "फूट डालो और राज करो" नीति और मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग का परिणाम था।बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में जब भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने गति पकड़ी, तब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग दो प्रमुख राजनैतिक शक्तियाँ बनकर उभरीं। जहाँ कांग्रेस धर्मनिरपेक्षता की और अखिल भारतीय राष्ट्रवाद की बात कर रही थी, वहीं मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र की माँग कर रही थी, जिसे 1940 के लाहौर प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से रखा गया।ब्रिटिश सरकार ने माउंटबेटन योजना (1947) के तहत भारत के दो हिस्सों में विभाजन को स्वीकार किया। जिसमें पंजाब और बंगाल जैसे प्रांतों का भी विभाजन हुआ। विभाजन के परिणामस्वरूप लगभग 1.5 करोड़ लोग अपने स्थान से विस्थापित हुए और लगभग 10 लाख से अधिक लोगों की सांप्रदायिक हिंसा में मृत्यु हुई।'पेटे रीज के अपने आंकड़ों के मुताबिक मार्च से लेकर जुलाई के अंत तक पंजाब में मरनेवालों की तादाद 4,500 और घायलों की तादाद 2,500 तक पहुंच चुकी थी। लेकिन सिर्फ अगस्त महीने में ही सेना के आंकड़ों के मुताबिक मरने वालों की संख्या 15,000 आंकी गई। रीज ने स्वीकार किया कि इसकी वास्तविक संख्या इससे 'दो या तीन गुना ज्यादा हो सकती है(गुहा,2011)।'

भारत विभाजन न केवल राजनीतिक सीमाओं का पुनर्निर्धारण था, बल्कि इसने मानवीय त्रासदी, सांप्रदायिक तनाव और सांस्कृतिक विघटन को जन्म दिया, जिसके प्रभाव आज तक महसूस किए जाते हैं। यह घटना भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की सबसे दर्दनाक और निर्णायक घटनाओं में से एक मानी जाती है।

बीज शब्द - विभाजन, औपनिवेशिक, विचारधारा, द्वि-राष्ट्र, सांप्रदायिकता, शरणार्थी, त्रासदियां।

1947 में हुआ भारत का विभाजन दक्षिण एशिया के इतिहास की सबसे निर्णायक और गहन घटनाओं में से एक माना जाता है। इस विभाजन ने ब्रिटिश भारत को दो स्वतंत्र राष्ट्रों भारत और पाकिस्तान में बाँट दिया। यह प्रक्रिया मुख्य रूप से धार्मिक आधार पर हुई। मुस्लिम लीग स्थापित होने के बाद से ही लीग खुद को मुस्लिमो का एकमात्र संगठन बताने मे लगा रहा जबकि कांग्रेस इससे सहमत नही थी, फिर भी कांग्रेस और लीग मे जब भी कोई समझौता हुआ, कांग्रेस रियायतें देती गई लेकिन सांप्रदायिक शक्तियों की नींव कमजोर पड़ने की बजाय और दृढ़ होती गई। मुस्लिम लीग की सफलता से प्रभावित होकर और ज्यादा मुसलमान उनकी छत्रछाया में आने लगे थे। जिन्ना ने जब देखा कि कांग्रेस झुक रही है तो उन्होंने अपनी माँगें और बढ़ा दीं। दूसरी ओर हिन्दू नेताओं ने दावा किया कि वे ही हिन्दू हितों के संरक्षक हैं, जिनका बलिदान कांग्रेस राष्ट्रीय एकता के नाम पर लगातार करती आ रही है। यह प्रचार काफी सफल रहा और हिन्दू तत्वों का प्रभाव भी बढ़ा(चंद्र, मुखर्जी, मुखर्जी, पाणिकर, महाजन, 2015)।जिसने उपमहाद्वीप में स्थायी विभाजन की नींव रखी। भारत को एक धर्मनिरपेक्ष

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, का.हि.वि.वि, वाराणसी (उ.प्र.), 221005
Email.Id-hs329877@gmail.com

राष्ट्र के रूप में स्थापित किया गया, जबकि पाकिस्तान को मुस्लिम समुदाय के लिए एक अलग राष्ट्र के रूप में देखा गया।इस ऐतिहासिक परिवर्तन के दौरान देशभर में व्यापक हिंसा, सांप्रदायिक दंगे और जनसंहार हुए। लाखों लोग अपने घरों को छोड़कर नए सीमाओं के पार चले गए, जिससे यह इतिहास के सबसे बड़े और दुखद मानव पलायनों में से एक बन गया। विभाजन की यह पीड़ा और इसकी विरासत आज भी भारत और पाकिस्तान के संबंधों, विशेषकर कश्मीर विवाद पर गहरा प्रभाव डालती है।

विभाजन की पृष्ठभूमि और ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियाँ

भारत के विभाजन की नींव 1905 में बंगाल विभाजन से पड़ी, जिसे लॉर्ड कर्ज़न ने धार्मिक आधार पर पूर्वी (मुस्लिम बहुल) और पश्चिमी (हिंदू बहुल) हिस्सों में बाँटा। यह ब्रिटिश सरकार की "फूट डालो और राज करो" नीति की शुरुआत थी। 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई, जिसे ब्रिटिश सरकार का समर्थन प्राप्त था।

1909 के मॉर्ले-मिंटो सुधारों (भारतीय परिषद अधिनियम,1909) ने पहली बार धार्मिक आधार पर पृथक निर्वाचन मंडलों की शुरुआत की, जिससे मुस्लिमों को अलग प्रतिनिधित्व मिला। इससे सांप्रदायिक राजनीति को संस्थागत समर्थन मिला। 1919 के मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों (भारत शासन अधिनियम,1919) ने इस प्रणाली को और विस्तारित किया।

1935 का भारत शासन अधिनियम,ऐसी नीतियों की चरम परिणति थी जिसमें हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, एंग्लो-इंडियन आदि समुदायों के लिए अलग-अलग निर्वाचन मंडलों की व्यवस्था की गई। इससे धार्मिक आधार पर पहचान व राजनीति और गहराई से बँट गई।1940 में मुस्लिम लीग ने 'लाहौर प्रस्ताव' के माध्यम से अलग राष्ट्र की मांग की।द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार जल्दबाज़ी में सत्ता हस्तांतरण की ओर बढ़ी। इन सभी नीतियों ने 1947 में विभाजन की भूमिका तय कर दी।

द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त और पाकिस्तान की मांग(लाहौर प्रस्ताव,1940)-कवि और राजनैतिक विचारक मुहम्मद इक़बाल को भारतीय मुसलमानों के लिए एक पृथक राष्ट्र "पाकिस्तान"की कल्पना का जनक माना जाता है। 'सर्व इस्लाम' की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने 1930 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के इलाहाबाद अधिवेशन में एक ऐतिहासिक वक्तव्य दिया। इसमें उन्होंने कहा"यदि यह मान लिया जाए कि भारत में साम्प्रदायिक समस्या का स्थायी समाधान यह है कि मुसलमानों को अपनी संस्कृति और परंपराओं के पूर्ण स्वतंत्र विकास का अधिकार मिले, तो मेरी इच्छा होगी कि पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत, सिंध और बलोचिस्तान को मिलाकर एक राज्य का निर्माण किया जाए। यह राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत हो या स्वतंत्र, मुझे यह उत्तर-पश्चिम भारत में मुसलमानों का अंतिम राजनीतिक लक्ष्य प्रतीत होता है।"

'पाकिस्तान' के विचार को स्पष्ट रूप और नाम देने का कार्य कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के छात्र रहमत अली ने किया। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि पंजाब, अफ़गान प्रांत (उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत), कश्मीर, सिंध और बलोचिस्तान के क्षेत्रों को मिलाकर भारतीय मुसलमानों के लिए पृथक राष्ट्र बनाया जाए, जिसे उन्होंने "पाकिस्तान" नाम दिया। इस नाम का निर्माण इन प्रांतों के नामों के अक्षरों से हुआ था।रहमत अली का विश्वास था कि हिन्दू और मुसलमान दो मूलतः भिन्न राष्ट्र हैं। उन्होंने लिखा "हमारा धर्म, संस्कृति, इतिहास, परंपराएं, साहित्य, आर्थिक व्यवस्था, उत्तराधिकार और विवाह के नियम तक हिन्दुओं से मूल रूप से भिन्न हैं। ये भिन्नताएं केवल मूल सिद्धांतों में ही नहीं, बल्कि जीवन के छोटे-छोटे विवरणों में भी स्पष्ट हैं। हम मुसलमान और हिन्दू न एक साथ भोजन करते हैं, न आपस में विवाह। हमारे त्योहार, पंचांग, भोजन और पहनावा सब कुछ अलग हैं।"

हिन्दू और मुसलमान पृथक-पृथक जातियां हैं, इसकी घोषणा ऐसे शब्दों में मुहम्मद अली जिन्नाह ने लाहौर में मार्च,1940 के अधिवेशन में की। "ये (हिन्दू और मुसलमान) शब्द के नियम निष्ठ अर्थ में धर्म नहीं

है, अपितु वास्तव में भिन्न और स्पष्ट सामाजिक व्यवस्था हैं और यह एक स्वप्न है कि कभी भी हिन्दू और मुसलमान मिलकर एक राष्ट्र बना सकते हैं।..... इन दोनों के धार्मिक दर्शन, सामाजिक रीति-रिवाज और साहित्य भिन्न हैं......ऐसी दोनों जातियों को एक राज्य में इकट्ठे बांधने से जिसमें एक अल्पसंख्यक हो और दूसरी बहुसंख्यक इससे असंतोष बढ़ेगा और राष्ट्र ही नष्ट हो जाएगा।"

भारत का बंटवारा मांगते हुए मुस्लिम लीग ने यह प्रस्ताव पारित किया। "अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के इस अधिवेशन का यह दृढ़ विचार है कि इस देश में कोई भी संवैधानिक योजना सफल और मुसलमानों को स्वीकृत नहीं होगी जो कि निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित न हो, भौगोलिक स्थिति से एक-दूसरे से लगे हुए प्रदेश, आवश्यक परिवर्तनों सहित इस प्रकार गठित किए जाएं ताकि वहां मुसलमान बहुसंख्यक हो जावें जैसा कि भारत के उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी प्रदेश और इनको मिलाकर एक 'स्वतन्त्र' राज्य बना दिया जावे और उससे सम्मिलित प्रदेश स्वशासी और प्रभुसत्ता पूर्ण हों...."(ग्रोवर,2001)।

कैबिनेट मिशन (जुलाई, 1946)- ब्रिटिश सरकार ने मार्च,1946 में एक कैबिनेट मिशन भारत भेजा कि भारतीय नेताओं से भारतीयों को सत्ता सौंपने की शर्तों के बारे में बातचीत की जाए। कैबिनेट मिशन ने दो स्तरों वाली एक संघीय योजना का प्रस्ताव किया जिससे आशा की गई कि बड़ी मात्रा में क्षेत्रीय स्वायत्तता देकर भी राष्ट्रीय एकता को बनाए रखा जा सकेगा। इस योजना में प्रांतों और रजवाड़ों का एक संघ होता और संघीय केंद्र का केवल प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों और संचार विषयों पर मिलने तक नियंत्रण होता। साथ ही प्रांत अपने-अपने क्षेत्रीय संगठन भी बना सकते थे। लेकिन दोनों एक ऐसी अंतरिम सरकार की योजना पर सहमत न हो सके जो एक स्वतंत्र और संघीय भारत के लिए एक संविधान बनाने के उद्देश्य से, एक संविधान सभा का गठन करती। केबिनेट मिशन की जिस योजना पर दोनों पहले सहमत हो चुके थे उसके बारे में भी दोनों ने अलग-अलग व्याख्याएं सामने रखीं। अंतत: सितंबर,1946 में कांग्रेस ने जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में एक अंतरिम मंत्रिमंडल का गठन किया। कुछ हिचक के बाद अक्तूबर में मुस्लिम लीग भी इस मंत्रिमंडल में शामिल हो गई मगर उसने संविधान सभा का बहिष्कार करने का फैसला किया। 20 फरवरी,1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने घोषणा की कि ब्रिटेन जून,1948 तक भारत का शासन छोड़ देगा।लेकिन मिलने वाली स्वाधीनता की खुशियों पर अगस्त,1946 के बाद भड़कने वाले व्यापक सांप्रदायिक दंगों ने पानी फेर दिया। हिंदू और मुस्लिम संप्रदायवादियों ने इन जघन्य हत्याओं का दोषी एक दूसरे को ठहराया और क्रूरता से एक दूसरे का मुकाबला करते रहे।

अंत में मार्च,1947 में वायसरॉय बनकर भारत आए लॉर्ड लुई माउंटबेटन ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं से लंबी-लंबी बातचीतों के बाद समझौते का एक रास्ता निकाला कि देश स्वाधीन तो होगा मगर एक नहीं रहेगा। भारत का विभाजन होगा और भारत के साथ पाकिस्तान नामक एक नया राज्य भी स्थापित होगा। बड़े पैमाने पर खून-खराबा और सांप्रदायिक दंगों का अंदेशा सामने था, इसलिए राष्ट्रवादी नेताओं ने मजबूर होकर भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया(चंद्र, 2018)।

प्लान बाल्कन-24 मार्च और 6 मई के बीच भारतीय नेताओं के साथ 133 साक्षात्कारों की तीव्र शृंखला के बाद माउंटबेटन ने तय किया कि कैबिनेट मिशन की रूपरेखा अव्यावहारिक हो चुकी है। तब उन्होंने एक वैकल्पिक योजना बनाई जिसे 'प्लान बाल्कन' का गुप्त नाम उचित ही दिया गया। इसमें विभिन्न प्रांतों को (या यदि हस्तातंरण से पूर्व संघ बन जाएं तो संघों को) सत्ता का हस्तांतरण करने की बात थी जिसमें पंजाब और बंगाल की विधायिकाओं को यह अधिकार होता कि वे चाहें तो अपने प्रांतों का विभाजन कर लें; इस प्रकार बननेवाली विभिन्न इकाइयां और रजवाड़े सर्वोच्चता समाप्त होने से स्वतंत्र हो जाएंगे और उनको यह स्वतंत्रता होगी कि वे चाहें तो भारत या पाकिस्तान में मिलें या स्वतंत्र रहें। लेकिन यह योजना तब शीघ्र ही त्याग दी गई जब 10

मई को शिमला में माउंटबेटन ने व्यक्तिगत रूप से नेहरू को इसकी सूचना दी और नहेरू ने इस पर अत्यंत तीखी प्रतिक्रिया प्रकट की(सरकार,2018)।

प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस (अगस्त, 1946)-मुस्लिम लीग ने अपनी "पाकिस्तान" की माँग को पूरा करने के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही का आश्रय लिया। लीग ने 16 अगस्त, 1946 का दिन प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के रूप में मनाने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए उत्तेजित किया। बंगाल की लीग सरकार ने इस दिन सार्वजनिक अवकाश की घोषणा कर दी। इस दिन कलकत्ता और सिलहट में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए। अकेले कलकत्ता में लगभग 7 हजार व्यक्ति मौत के घाट उतार दिए गए। हिंसा की आग पूर्वी बंगाल तक जा पहुँची। नोआखली, त्रिपुरा, बिहार, लाहौर और रावलपिण्डी तथा देश के अन्य भागों में भी साम्प्रदायिक दंगों की लहर फैल गयी। इस साम्प्रदायिक पागलपन ने हजारों निरीह लोगों को मौत के घाट उतार दिया। चारों ओर आतंक का वातावरण पैदा हो गया। परिस्थिति इतनी बिगड़ गयी थी, कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एटली ने 20 फरवरी,1947 को घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार जून,1948 से पहले ही भारतीयों को पूर्ण सत्ता हस्तान्तरित कर देगी। लॉर्ड माउण्टबेटन ने इस संवैधानिक गतिरोध का कोई समाधान सम्भव न होने के कारण 3 जून, 1947 को अपनी योजना में भारत और पाकिस्तान दो अलग-अलग राज्यों की स्थापना की बात कही। इसी योजना के आधार पर ब्रिटिश संसद ने जुलाई, 1947 में भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित कर भारत को दो राज्यों में विभक्त कर दिया। 14 अगस्त,1947 को मिस्टर जिन्ना ने पाकिस्तान के गवर्नर जनरल का पद संभाला। इस प्रकार मुस्लिम सांप्रदायिकता व ब्रिटिश शासन के अपवित्र गठबंधन तथा 'फूट डालो और शासन करो' के परिणाम स्वरुप धर्म के आधार पर देश का विभाजन हुआ तथा पाकिस्तान का निर्माण हुआ(अग्रवाल,2014)।

भारत विभाजन के कारण

भारत का विभाजन स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की एक निर्णायक घटना थी। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का मूल उद्देश्य भारत को एक संगठित एवं अविभाजित राष्ट्र के रूप में स्वतंत्र कराना था। महात्मा गांधी स्वयं इस विचार के प्रबल पक्षधर थे और उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था, "पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा।" यह कथन विभाजन के प्रति उनके दृढ़ विरोध को दर्शाता है। 1946 तक यह आशा बनी हुई थी कि भारत की एकता को बनाए रखा जा सकेगा। किन्तु जुलाई,1946 से मार्च,1947 के बीच घटित घटनाक्रमों ने स्थिति को गंभीर रूप से बदल दिया। इन घटनाओं ने एक ऐसी जटिल समस्या को जन्म दिया, जिसका समाधान अंततः भारत के विभाजन में ही खोजा गया।

इस विभाजन की प्रक्रिया अत्यंत तात्कालिक और अप्रत्याशित रही, जिससे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या भारत का विभाजन वास्तव में जरूरी था? इस विषय पर विभिन्न विचारधाराएँ सामने आईं। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जैसे वरिष्ठ नेताओं का मानना था कि विभाजन रोका जा सकता था, जबकि पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे अन्य कांग्रेसी नेता इसे एक व्यावहारिक समाधान मानकर स्वीकार कर चुके थे।दूसरी ओर, इतिहासकारों और समकालीन पर्यवेक्षकों का एक बड़ा वर्ग यह मानता है कि एक वर्ष के भीतर अनेक घटनाएँ हुई जैसे दंगों का उभार, सांप्रदायिक तनाव, राजनीतिक गतिरोध एवं मुस्लिम लीग की जिद ने भारत के विभाजन को लगभग अपरिहार्य बना दिया था। यह मत अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं को विभाजन की वास्तविकता को स्वीकार करना पड़ा।

ब्रिटिश शासकों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। शताब्दियों से सह-अस्तित्व की भावना से जीते आ रहे हिन्दू और मुसलमानों के मध्य अंग्रेजों ने जानबूझकर अविश्वास और वैमनस्य की भावना को बढ़ावा दिया। लॉर्ड मिंटो ने मुसलमानों को सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व देकर भारतीय राष्ट्रीय जीवन में सांप्रदायिकता का विष घोलने का निंदनीय कार्य किया,जिसके

दुष्परिणामों के रूप में पाकिस्तान अस्तित्व में आया। डॉ राजेंद्र प्रसाद ने ठीक ही लिखा है कि,"पाकिस्तान के निर्माता कवि इकबाल या मिस्टर जिन्ना नहीं वरन लॉर्ड मिंटो थे(अग्रवाल,2014)।
हालाँकि मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रायः विभाजन के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है, लेकिन हिन्दू साम्प्रदायिकता की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। हिन्दू महासभा जैसे संगठन मुस्लिम विरोधी विचारों के पोषक थे और मुसलमानों को भारत में 'बाहरी' मानते थे। इस प्रकार की कट्टर विचारधारा ने मुस्लिम लीग की माँग को और बल प्रदान किया।20वीं शताब्दी के आरंभ से ही मुस्लिम नेतृत्व में अलगाव की भावना बढ़ने लगी थी। सर सैय्यद अहमद खाँ जैसे नेताओं ने हिन्दुओं से पृथक रहकर मुसलमानों की उन्नति की बात कही, जिससे द्विराष्ट्र सिद्धांत की पृष्ठभूमि तैयार हुई। मुस्लिम लीग ने इसी भावना को राजनीतिक रूप दिया और अंग्रेजों के समर्थन से अलग राष्ट्र की माँग को व्यापक स्वरूप दिया।इसी क्रम में मोहम्मद अली जिन्ना की हठधर्मिता भी विभाजन का एक प्रमुख कारण बनी। वे किसी भी ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, जिससे पाकिस्तान की माँग को ठेस पहुँचती। जिन्ना के इसी रवैये के कारण गोलमेज सम्मेलन, कैबिनेट मिशन योजना और वेवल योजना असफल रहीं। उनकी ज़िद ने साम्प्रदायिक समाधान के सभी रास्ते बंद कर दिए।जिन्ना का 1940 के दौरान कहना था कि " किसी भी परिभाषा के मुताबिक भारत के मुसलमान एक अलग राष्ट्र हैं और उन्हें अपना अलग गृह-प्रदेश और राज्य बनाने का अधिकार है(प्रधान,2017)।"

जब संवैधानिक उपायों से मुस्लिम लीग असफल हुई, तो उसने सीधी कार्यवाही दिवस जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से दंगे और हिंसा को बढ़ावा दिया। कलकत्ता, त्रिपुरा और नौआखली में भड़की हिंसा ने जनमानस को भयभीत कर दिया और हिन्दू-मुस्लिम एकता की संभावनाओं को लगभग समाप्त कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने इन दंगों को रोकने में उदासीनता दिखाई, जिससे यह शक और पुख्ता हुआ कि वे लीग की माँगों के पक्षधर हैं।

ब्रिटिश अधिकारियों का दृष्टिकोण भी विभाजन को प्रेरित करने वाला था। वे भारत में गृहयुद्ध की संभावना से डरते थे और पाकिस्तान की माँग को एक सुरक्षित समाधान मानते थे। कई प्रशासनिक विभागों में मुसलमानों को प्रमुखता दी जा रही थी, जिससे सत्ता संतुलन अस्थिर हो गया था। इसी पृष्ठभूमि में नेहरू ने कहा कि "हम दर्द से मुक्ति पाने के लिए सर कटवाने को तैयार हो गए", जो उस समय की निराशा और तनाव को दर्शाता है।

कांग्रेस की मुस्लिम लीग के प्रति तुष्टिकरण की नीति और बाद में हुए विरोधाभासी निर्णयों ने भी स्थितियों को जटिल बनाया। खिलाफत आंदोलन में समर्थन, 1916 का लखनऊ समझौता और साम्प्रदायिक निर्णय के प्रति उदासीनता जैसी नीतियाँ लीग को मज़बूत करने वाली साबित हुईं।

अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग की भागीदारी भी निष्फल रही। लीग के नेता सरकार में रहते हुए भी उसके कार्यों में बाधा डालते रहे। वित्त मंत्री लियाकत अली खाँ ने वित्तीय स्वीकृतियों पर रोक लगाकर सरकार को पंगु बना दिया। इससे कांग्रेस को विश्वास हो गया कि मिलीजुली सरकार चलाना असम्भव है।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा सत्ता हस्तांतरण की समयसीमा तय करने से भी विभाजन की प्रक्रिया तेज हो गई। यदि कांग्रेस विभाजन को अस्वीकार करती, तो यह आशंका थी कि ब्रिटिश भारत को और अधिक टुकड़ों में बाँटकर सत्ता सौंप देंगे। इस संकट से बचने के लिए विभाजन को स्वीकार करना एक रणनीतिक विवशता बन गई। इसके साथ ही माउंटबेटन एक अन्य व्यक्ति है जिनकी चर्चा किए बिना विभाजन पर विवाद अधूरा रह जाएगा। जब मार्च,1947 में वह वायसराय बनकर आए तो उन्होंने आनन-फानन में भारत के नेताओं से बात कर यह बात ताड़ ली कि विभाजन के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। शीघ्र ही उन्होंने जिन्ना,पटेल और नेहरू को देश के विभाजन के लिए मना लिया। आलोचक पूछते हैं कि आखिर इतनी जल्दबाजी क्यों की गई?शायद कुछ ज्यादा समय मिलता तो इतना खून खराबा नहीं होता। लेकिन माउंटबेटन के समर्थकों का कहना है कि उस समय जो हिंदुस्तान की स्थिति थी उसमे कोई दूसरा विकल्प था ही नहीं। कौमी दंगे चारों तरफ हो रहे थे।

अन्तरिम सरकार कुछ भी करने की स्थिति में नही थी,सेना सहित चारों तरफ विद्रोह की स्थिति बन रही थी। भारत गृह युद्ध के कगार पर खड़ा था। युद्ध के बाद ब्रिटेन इतना कमजोर हो गया था कि सैन्य बल के आधार स्थिति को नियंत्रित करने की स्थिति में नहीं था। साथ ही भारत के लोगों में आजादी की भूख इतनी बढ़ गयी थी, उन्हें अब गुलाम बनाकर रखना एक असंभव कार्य हो गया था। भारत के नेता भी सत्ता हस्तांतरण के लिए बेताब थे शायद माउन्टबेटन को लगा कि इतनी सारी समस्याओं को संभालना ब्रिटेन के क्षमता की बाहर की बात हो गयी है। इसलिए भारत के लोग और नेता अपनी समस्याओं से स्वयं जूझे और ब्रिटेन का विभाजन के साथ आजादी देकर यहाँ से भागना एकमात्र विकल्प था। लाचारी चाहे जो भी रही हो, भारत-विभाजन की त्रासदी से माउन्टबेटन को मुक्त नहीं किया जा सकता(प्रधान,2017)।

अंततः, सत्ता के प्रति आकर्षण भी एक कारण था। भारतीय नेताओं द्वारा भारत विभाजन की योजना स्वीकार कर लेने का एक महत्वपूर्ण कारण उनका सत्ता के प्रति आकर्षण भी था। माइकल ब्रेचर के अनुसार,"कांग्रेसी नेताओं के सम्मुख सत्ता के प्रति आकर्षण भी था इन नेताओं ने अपने राजनीतिक जीवन का अधिकांश भाग ब्रिटिश विरोध में बिताया था और अब वे स्वाभाविक रूप से सत्ता के प्रति आकर्षित हो चुके थे। कांग्रेसी नेता सत्ता का आस्वादन कर ही चुके थे और विजय की घड़ी में उससे अलग होने की इच्छुक नहीं थे(अग्रवाल,2014)।"

विभाजन के प्रभाव

1947 में भारत का विभाजन एक ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक घटना थी जिसका प्रभाव गहरा और बहुआयामी रहा। विभाजन के फलस्वरूप भारत और पाकिस्तान दो स्वतंत्र राष्ट्र बने परंतु इसकी कीमत लाखों लोगों को जान, घर और पहचान खोकर चुकानी पड़ी। लगभग 1.5 करोड़ लोग सीमा पार करने को मजबूर हुए, जिससे विश्व का सबसे बड़ा जनसंख्या विस्थापन हुआ। इस दौरान भीषण सांप्रदायिक हिंसा हुई, जिसमें अनुमानित 10 लाख से अधिक लोग मारे गए और हजारों महिलाओं का अपहरण व बलात्कार हुआ।

15 अगस्त,1947 को भारत ने उल्लास के साथ अपना पहला स्वाधीनता दिवस मनाया।यह उल्लास जिसे असीम और अबाध होना चाहिए था,दुख और उदासी से भरा हुआ था।भारत की एकता का सपना चकनाचूर हो चुका था और भाई- भाई से बिछड़ चुका था।इससे भी बुरी बात यह थी कि स्वतंत्रता के क्षण में भी अवर्णनीय बर्बरता के साथ सांप्रदायिकता का दानव भारत और पाकिस्तान, दोनों देशों में लाखों लोगों की बलि दे रहा था। अपने पूर्वजों की धरती से नाता तोड़कर लाखों-लाख शरणार्थी इन दो नए राज्यों में पहुंच रहे थे।राष्ट्र का विजय के इस क्षण में घटित इस त्रासदी के प्रतीक वही गांधीजी थे जिन्होंने भारतीय जनता को अहिंसा-सत्य-प्रेम- साहस- शूरवीरता का संदेश दिया था, जो भारतीय संस्कृति के उत्कृष्टतम तत्वों के प्रतीक थे। राष्ट्रीय हर्ष के इन दिनों में भी वे घृणा से चूर बंगाल के गांवों में चक्कर लगा रहे थे और उन लोगों को राहत पहुंचाने की कोशिश कर रहे थे जो उस समय भी वहशियाना सांप्रदायिक हत्याकांडों के द्वारा स्वतंत्रता की कीमत चुकाने का काम कर रहे थे। इन खुशियों की गूंज अभी थमी भी न थी कि 30 जनवरी,1948 को एक हत्यारे, घृणा से चूर एक हिंदू-कट्टरपंथी ने उस चिराग को बुझा दिया जो 70 वर्षों से हमारे इस देश में उजाला फैलाता आ रहा था। इस तरह महात्मा गाँधी 'एकता के जिस उद्देश्य के प्रति हमेशा समर्पित रहे उसी के लिए शहीद हो गए।

इस काल के बारे में नेहरू ने बाद में लिखा कि " भय और घृणा ने हमारे मन को जकड़ लिया था और सभ्यता के सारे बंधन टूट चुके थे। एक दरिंदगी के बाद दूसरी दरिंदगी देखने में आई और मानव शरीरधारी प्राणियों की निर्मम पशुता को देखकर हृदय एकाएक शून्य से भर उठा। चिराग एक-एक करके बुझते नजर आए हां, सभी नहीं, क्योंकि दो-एक अभी भी उमड़ते तूफान में टिमटिमा रहे थे। हम मरने वालों और मर रहे लोगों के प्रति और मौत से भी अधिक भयानक दौड़ उठा रहे लोगों के प्रति दुखी थे। इससे भी अधिक दुखी थे हम भारत, अपनी साझी माता के प्रति, जिसकी मुक्ति के लिए हम इतने वर्षों से प्रयास करते आ रहे थे(चंद्र,2018)।"मद्रास

के प्रतिष्ठित साप्ताहिक स्वतंत्र के पंजाब संवाददाता ने हिंसा की समरूपता के बारे में विस्तार से लिखा। उसने देखा कि-

'शरणार्थियों के लिए चलाई गई एक विशेष रेलगाड़ी जो बिल्कुल ही खाली थी, फिरोजपुर स्टेशन में दोपहर को प्रवेश कर रही थी। ट्रेन का ड्राइवर डर से पीला पड़ा हुआ था और गार्ड की उसके कंपार्टमेंट में हत्या कर दी गई थी। इंजन में कोयला झोंकने वाला ड्राइवर का सहायक गायब था। मैं प्लेटफॉर्म की तरफ गया। ट्रेन के दो डिब्बों को छोड़कर सभी रक्तरंजित थे। तीसरे दर्जे के डिब्बे में खून से सने हुए तीन शव फर्श पर पड़े थे। लाहौर और फिरोजपुर के बीच मुसलमानों की हथियारबंद भीड़ ने ट्रेन को रोककर उन सभी लोगों को दिनदहाड़े मार डाला था।'

इसमें कोई दो मत नहीं कि यह इतिहास का सबसे बड़ा मानवीय विस्थापन था। 'ज्ञात इतिहास में इतने कम दिनों में किसी भी जगह इतने लाख लोगों का विस्थापन नहीं हुआ"। एक प्रत्यक्षदर्शी ने लिखा कि

उन्होंने गर्मी, बरसात, बाढ़ और पंजाब की कंपकंपाने वाली ठंड की परवाह नहीं की। काफिले से उड़नेवाली धूल पूरे इलाके में छा गई और यह धूल लोगों के मन में व्याप्त भय और उनके शरीर से निकलने वाले पसीने से घुलमिल गई। वह धूल मानव मलमूत्र और सड़ती हुई लाशों के साथ मिल गई। जब नफरत का बादल छंटा और लाशों की गिनती की गई तो उसकी तादाद पांच लाख तक पहुंच गई, जो बंदूक की गोलियों से, तलवारों से, चाकूओं से, छुरियों से और अन्य महामारियों से मारे गए थे। इनमें सबसे ज्यादा लोग हिंसक घटनाओं में ही मारे गए थे, लेकिन ऐसे भी थके हुए, लुटे-पिटे लोग थे जो अपने बर्बाद होते घरों और उजड़ते खेतों को देखकर सदमें से मर गए थे। ऐसी जिंदगी का क्या मतलब था जब जीने की तमाम वजहें खत्म हो जाएं और इंसान जंगली बनने पर उतारू हो जाए? अपने सामने मार दिए गए छोटे-छोटे बच्चों या कुएं में कूदकर जान दे चुके अपने प्रियजनों को देखने से बेहतर था कि वे खुद भी अपनी जिंदगी खत्म कर लें(गुहा,2011)।

1947 का भारत-विभाजन न केवल उपमहाद्वीप के भौगोलिक मानचित्र को बदलने वाला एक ऐतिहासिक घटनाक्रम था बल्कि इसने सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर भी गहरा प्रभाव डाला। धार्मिक आधार पर हुए इस विभाजन के फलस्वरूप भारत और पाकिस्तान का निर्माण हुआ, जिससे बंगाल और पंजाब जैसे प्रांतों का विभाजन हुआ और दोनों ओर साम्प्रदायिक हिंसा, व्यापक जनहानि तथा जबरन पलायन की त्रासदी ने जन्म लिया। अनुमानतः लगभग 1.5 करोड़ लोगों ने स्थानांतरण किया और 10 लाख से अधिक लोगों की जान गई।

इस ऐतिहासिक घटना ने महिलाओं पर विशेष रूप से अमानवीय अत्याचार किए जिसमें अपहरण, बलात्कार और आत्महत्याओं की घटनाएँ व्यापक स्तर पर दर्ज की गई।आर्थिक दृष्टि से भारत को कच्चे माल (जैसे जूट और कपास) की कमी और पाकिस्तान को ईंधन की कमी का सामना करना पड़ा। दोनों नवगठित राष्ट्रों ने शरणार्थियों के पुनर्वास को लेकर गंभीर सामाजिक और प्रशासनिक चुनौतियाँ झेली।सबसे महत्वपूर्ण यह रहा कि इस विभाजन ने भारत के धर्मनिरपेक्ष चरित्र की नींव को कसौटी पर रखा। साम्प्रदायिक सह-अस्तित्व और सांस्कृतिक समन्वय की अवधारणाएँ, जो सदियों से भारतीय समाज का हिस्सा रही थीं, गहरे संकट में आ गईं। आज भी भारत और पाकिस्तान के संबंधों में व्याप्त अविश्वास और शत्रुता, विभाजन की उस ऐतिहासिक पीड़ा की प्रतिध्वनि है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. गुहा, रामचंद्र, 2011, भारत गांधी के बाद, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया, हरियाणा, पृष्ठ.संख्या. (17)
2. चंद्रा, बिपिन, मुखर्जी, एम., मुखर्जी आ., पनीकर,के. एन., महाजन,सु.,(2015),भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली,पृ.सं.(475)
3. ग्रोबर,बी.एल.,यशपाल, 2001,आधुनिक भारत का इतिहास,एस.चन्द् एण्ड कम्पनी लि.,नई दिल्ली,पृ. सं.(423-24)
4. चंद्र,विपिन, 2018,आधुनिक भारत का इतिहास,ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड,हैदराबाद,पृ.सं.(326-27)
5. सरकार,सुमित, 2018,आधुनिक भारत (1885-1947),राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,पृ.सं. (469)
6. अग्रवाल,आर,सी., 2014,भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन,एस.चंद एण्ड कम्पनी प्रा.लि.,नई दिल्ली,पृ.सं.(160-61)
7. अग्रवाल,आर,सी., 2014,भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन,एस.चंद एण्ड कम्पनी प्रा.लि., नई दिल्ली,पृ.सं.(161)
8. प्रधान,रामचंद्र, 2017,राज से स्वराज,प्रभात पेपर वैक्स, नई दिल्ली,पृ.सं.(402)
9. प्रधान,रामचंद्र, 2017,राज से स्वराज,प्रभात पेपर वैक्स, नई दिल्ली,पृ.सं.(417-18)
10. अग्रवाल,आर,सी., 2014,भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन,एस.चंद एण्ड कम्पनी प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ.सं.(162)
11. चंद्र,विपिन, 2018,आधुनिक भारत का इतिहास,ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड,हैदराबाद,पृ.सं.(329-30)
12. गुहा,रामचंद्र, 2011,भारत गांधी के बाद,पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया,हरियाणा,पृ.सं.(18-20)

प्राचीन भारतीय नगरों का विकास

डॉ. रजनीकान्त राय*

प्राचीन कल में नगर निर्माण वास्तुकला का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता था। नगरों का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जाता था, जहाँ नागरिकों को हर प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हों। शहरों को बनाने के पूर्व एक ऐसा भू–खण्ड देखा जाता था, जो या तो पहाड़ों पर हो या सामान्य सतह से कुछ ऊँचा हो।[1] इस कार्य के लिये नगर सन्निवेश या नगर–मापन शब्द 'दीघ निकाय' में दो बार प्रयुक्त हुआ है।[2] नगर मापन के लिये कतिपय अन्य शब्दों का भी प्रयोग यत्र–तत्र मिलता है।

पालि साहित्य में नगर निर्माण सम्पन्न कराने वाले अधिकारी के लिये ''वत्थविज्जाचरिय" (वास्तु विद्याचार्य) शब्द प्राप्त होता है।[3] इनके कार्य में सहायता पहुँचाने के लिये "शिल्पि संघ" शब्द का प्रयोग हुआ है।[4] इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि नाना शिल्पियों के समूह ने अयोध्या का पुनर्निर्माण किया था। पालि साहित्य में कस्बे के लिये नगर शब्द आया है, जैसे राजा विदेह की राजधानी मिथिला, जिनके राज्य में सोलह सहस्त्र ग्राम थे, नगर कहलाती थी, बहुत बड़े–बड़े शहर भी थे, जो महानगर कहलाते थे, जिसमें से बुद्ध के समय में छः प्रचलित थे।[5]

एक विशाल देश होने के कारण भारत के सभी भागों में नगरों की संवृद्धि समान रूप से नहीं हो सकती थी। प्राचीन काल में नगर वहीं विकसित हुये, जहाँ आसानी से आवागमन के साधन उपलब्ध थे, खनिज अयस्क प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते थे, जिससे हथियारों एवं औजारों के निर्माण में आसानी होती थी।[6] प्रायः नदियों के किनारे नगरों के बसने का कारण पानी की सामान्य उपलब्धता एवं व्यापार एवं वाणिज्य के लिए आसानी से जल मार्गों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। इसका एक लाभ यह भी था कि स्थल मार्गों में जो आक्रामक दल व्यापारियों को लूट लेते थे, उनसे नदी मार्गों द्वारा सुरक्षा एवं कम खतरे की संभावनायें थीं। प्रायः जब एक राज्य दूसरे राज्यों पर आक्रमण करते थे तो उन्हें बड़ी सेनाओं को जल मार्गों के द्वारा ले जाना सुलभ था।

नगर निर्माण के सम्बन्ध में कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह बात ज्ञात होती है कि राजा को नगर निर्माण कहाँ कराना चाहिये, उनके अनुसार– राजा को चाहिये कि धनोत्पादन के मुख्य केन्द्र पर बड़े–बड़े स्थानीय नगरों का निर्माण करवायें। किसी नदी के संगम पर बड़े–बड़े तालाबों के किनारे या कमलयुक्त जलाशयों के तट पर भी नगर बसाये जा सकते है। नगर निर्माण चौकोर, लम्बा अथवा गोलाकार होना चाहिये, इसके चारों ओर छोटी–छोटी नहरों द्वारा पानी का प्रबन्ध अवश्य रहे एवं नगर में आने जाने के लिये जलमार्ग और स्थल मार्ग दोनों की सुविधा होनी चाहिये।[7]

काशी प्राचीन भारतीय नगरों में सबसे सम्पन्न तथा प्रसिद्ध था, यह नगर बारह योजन की दूरी में स्थित था, जो वरुणा एवं असी नदियों के बीच स्थित था, जो एक मुख्य नदी बन्दरगाह भी था।[8] वाराणसी अथवा काशी नगर की प्रसिद्धि धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक तीनों प्रकार से थी जैसा कि हम जानते हैं, हर्यंक वंश, मौर्य वंश, गुप्त वंश जैसे सभी प्रमुख राजवंशों ने काशी प्रान्त पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का पूर्ण प्रयत्न किया, जिससे इस नगर की उपयोगिता स्वतरू सिद्ध होती है।
विद्वानों एवं ग्रन्थों के अनुसार काशी नगर की तुलना आदर्श नगर राज्य कोशल से की गयी है, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। अयोध्या नगर का वर्णन रामायण में प्राप्त होता है, ऐसा माना जाता है कि अयोध्या नगर को मनु ने बसाया था। बौद्ध ग्रन्थ 'धम्मपद' के अनुसार उसका निर्माण लगभग 5वीं शदी ई0पू0 में किया गया एवं इसके वास्तुकार महागोविन्द थे।[9]

अयोध्या नगर आयताकार (14 X 4 किमी 02) में चौड़ी समतल जगह पर बसा हुआ था। रामायण में अयोध्या नगर को बारह योजन लम्बी एवं तीन योजन चौड़ी बताया गया है। यह नगर सरयु नदी के तट पर बसाया गया एवं धनधान्य से परिपूर्ण था। कालान्तर में यहाँ पर इक्ष्वाकु वंशी, सूर्य वंशी एवं रघुवंशी क्षत्रियों द्वारा शासन किया गया। रामायण में वर्णित श्री राम की जन्मभूमि अयोध्या ही थी।

---

* सहायक प्राध्यापक, श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, फाफाम0, प्रयागराज।

प्राचीन कालीन भारतीय नगरों में राजगृह, जो मगध की राजधानी थी, इन्द्रप्रस्थ जो कुरु राज्य की राजधानी थी। तक्षशिला, जो पश्मिोत्तर भारत में अध्ययन का एक प्रमुख केन्द्र था, जो प्रायः तीन भागों में विभक्त था, जिन्हें सिरकप, सिरमुख एवं भीर के टीले के रूप में जाना जाता था। श्रावस्ती जो अचिरावती नदी के तट पर बसा हुआ था, पाटलिपुत्र जिसे मौर्यो द्वारा स्थापित किया गया, जिसका वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं मेगस्थनीज की इण्डिका में प्राप्त होता है। चम्पा जो अंग की राजधानी थी, कौशाम्बी जो वत्स राज्य की राजधानी थी। इन प्राचीन नगरों का भी प्राचीन काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था।

राजगृह नगर पाँच पहाड़ियों से घिरा हुआ था। राजगृह का पुराना नाम गिरिब्रज था। यह प्राचीन नगर 4.5 X 3 मील में फैला हुआ था।[10] तक्षशिला के अवशेष आधुनिक रावलपिण्डी के उत्तर पश्चिम में लगभग बीस मील की दूरी पर स्थित भीर टीला है, जिसकी पुष्टि उत्खन्न के साक्ष्यों से भी हुयी है।[11] कुरु राज्य की राजधानी इन्द्रप्रस्थ सात योजन में थी एवं कुरु राज्य तीन सौ योजन की दूरी में विस्तृत था। कालान्तर में यहां पर ऐतिहासिक कौरव एवं पाण्डव वंश का शासन हुआ, जिनके मध्य प्रसिद्ध 'कुरुक्षेत्र' का युद्ध लड़ा गया, जिसका उल्लेख हमें महाभारत नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है। श्रावस्ती अचिरावती नदी के तट पर बसा हुआ था। 'महापरिनिब्बान सुत्त' में इसकी गणना तत्कालीन सुप्रसिद्ध नगरों में की गयी है।[12]

प्राचीन कालीन विश्व के अन्य देशों की भांति भारत में भी नगर निर्माण के लिये ज्योतिषशास्त्र, धर्मशास्त्र और प्राचीन पौराणिक आख्यानों का सहारा लिया जाता था। नगर निर्माण के लिये कुछ प्रमुख अनुष्ठानों को सम्पन्न किया जाना आवश्यक माना जाता था, जिससे भवन निर्माण, नगर निर्माण को महत्वपूर्ण सामाजिक अवयव के रूप में देखा जा सकता है। प्राचीन भारत में नगर निर्माता प्रायः ब्राह्मण ही होते थे। उनको समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था।[13] वास्तुकारों के द्वारा जो बस्तियों का दिशा विन्यास किया जाता था, उसमें भारत की पछुआ पवनों को हमेशा ध्यान में रखा जाता था और जल का स्रोत नगर के पश्चिम में रखने के लिये कहा जाता था, जिससे पश्चिम से बहने वाली वायु ठण्डी एवं आर्द्र रहे।[14]

हवाओं के रुख के आधार पर ही राज प्रासादों का निर्माण किया जाता था। नगरों के सात प्रामाणिक आकार माने गये है (i) समानान्तर चतुर्भुजाकार (ii) वृत्ताकार (iii) वर्गाकार (iv) आयताकार (v) अर्धचन्द्राकार (vi) सर्पाकार एवं (vii) त्रिभुजाकार मत्स्य पुराण में वर्गाकार नगर शुभ माना गया है।[15] मत्स्य पुराण में आयाताकार नगर को नागरिकों के लिये मंगलदायक माना गया है, वृत्ताकार नगर इस ग्रन्थ के अनुसार श्रेष्ठ आकार है।[16] ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तान्त से पता चलता है कि उसके आगमन के समय भारत में चौकोर नगर प्रमुखतया विद्यमान थे।[17] प्राचीन नगर कभी–कभी समानान्तर चतुर्भुज के आकार के भी हुआ करते थे। इसकी सूचना मेगस्थनीज के यात्रा विवरण से प्राप्त होती है कि पाटलिपुत्र का आकार समानान्तर चतुर्भुज था।[18] ''कुछ अर्द्धचन्द्राकार नगरों का उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। मत्स्य पुराण में इस प्रकार के नगरों की बहुत प्रशंसा की गयी है, इसमें कहा गया है कि जो नगर नदी के तट पर स्थित होते हैं तथा जिनका आकार अर्द्धचन्द्र के समान है, वह सब प्रकार से श्रेष्ठ है।''[19]

नगर स्थापना का सबसे प्राथमिक उपाय सुरक्षा से सम्बन्धित था, जिन्हें प्राप्त करने के दो साधन थे। प्रथम प्राकृतिक एवं द्वितीय कृत्रिम। प्राकृतिक रूप में नदी, जल, पर्वत, प्रस्तर समूह, मरुभूमि तथा अरण्य सुरक्षा के प्रमुख साधन थे और द्वितीय साधन के रूप में गड्डों का निर्माण, परिखा का निर्माण, बाड़े का निर्माण, प्राचीर का निर्माण आदि थे, जो प्राकृतिक एवं कृत्रिम रूप से नगर की प्राथमिक सुरक्षा के कारक थे। उदाहरणार्थ– मथुरा नगर यमुना किनारे तथा द्वारका को समुद्र तट के किनारे स्थापित किया गया था। गिरिव्रज पर्वतों के द्वारा रक्षित था। महाभारत के अनुसार यह नगर वैराह, वाराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चौत्य नामक पाँच महाशृंगों के द्वारा स्थापित किया गया था।[20] इसके अतिरिक्त कृत्रिम सुरक्षा के अन्तर्गत दो प्रमुख नगरों कौशाम्बी एवं पाटलिपुत्र का विवरण प्राप्त होता जो नदियों के किनारे स्थित होने के अतिरिक्त प्राचीरों एवं परिखा के माध्यम से सुरक्षित की गयी थीं।[21]

सर्वप्रथम नगर निर्माण में परिखा का निर्माण किया जाता था। परिखा के बनाने के पूर्व जितनी भूमि में इसे बनाना होता था, उस पर चिन्ह लगा दिया जाता था, जिसे श्पारिखेय भूमिश कहा जाता था।[22] परिखा की संख्या एक से अधिक भी हो सकती थी। पाटलिपुत्र, अयोध्या एवं वाराणसी नगर के चारों ओर एक परिखा थी। श्रावस्ती एवं मिथिला नगर के परिखाओं की संख्या तीन थी।[23] चम्पा नगर खाइयों से घिरा हुआ था, इसके अतिरिक्त बसाढ़, कौशाम्बी, श्रावस्ती एवं राजगृह नगर के चारों तरफ भी खाइयाँ थीं। सामान्यतः अधिक

दृढ़ता लाने के लिये परिखा के भीतर ईटों की चुनाई की जाती थी। अर्थशास्त्र के अनुसार परिखा के निचले भाग तथा उसकी दीवारों में ईटों की चुनाई की जाये अथवा पाषाण खण्ड लगाये जाने चाहिये।[24]

अर्थशास्त्र में परिखा के परिमाण का उल्लेख मिलता है, इसके अनुसार नगर के चारों ओर चार हाथ की दूरी पर तीन खाइयाँ खुदवानी चाहिये, वे खाइयाँ क्रमशः चौदह, बारह, और दस दंड चौड़ी होनी चाहिये। जितनी वे चौड़ी हो उससे चौथाई अथवा आधी गहरी होनी चाहिये अथवा चौड़ाई का तीसरा हिस्सा भी गहरी हो सकती है।[25] इसके अतिरिक्त मेगस्थनीज की इण्डिका से ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र भारत का सबसे बड़ा शहर था, इसके चारों तरफ लकड़ी की एक प्राचीर बनी हुयी थी, जिनमें सैकड़ों प्रेक्षण–बुर्ज से युक्त 64 द्वार बने हुये थे, खुदाई में 35 मीटर से भी ज्यादा मोटे – प्राचीर के अवशेष मिले हैं उसे भूमि से एक–एक मीटर की गहराई तक गाड़े गये सागौन के शहतीरों को बाड़ की तरह खड़ा करके बनाया गया था।[26]

बाड़ों में प्राकारों का निर्माण किया जाता था, जिन्हें अट्टालक कहा गया है, ये नगर– प्रकार की चारों दिशाओं में विद्यमान होते थे। इन प्राकारों में बुर्जों का निर्माण किया जाता था। पाटलिपुत्र नगर के प्राकार में 510 बुर्ज थे एवं 64 द्वार विद्यमान थे, इसके अतिरिक्त प्राकार में चार प्रधान द्वारों के अतिरिक्त गौण द्वार भी होते थे।[27] बुर्ज की चोटी पर सैनिक नियुक्त किये जाते थे। जब दुर्ग पर शत्रु आक्रमण करते थे उस समय उनका संहार इन सैनिकों का प्रधान कर्त्तव्य था। ये चौकसी बुर्ज ईंट और पत्थर के बने होते थे।

प्राचीन काल में राजमार्ग यातायात के मुख्य साधन थे। ये मार्ग सभी कालों में सभी प्रकार की बस्तियों के बीच संचार और संपर्क का महत्वपूर्ण साधन थे। उनसे सेनायें एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती थीं, तीर्थयात्री सुदूर तीर्थों की यात्रायें सम्पन्न करते थे एवं व्यापारी दूर–दूर तक व्यापार के लिये जाते थे। राजधानी नगरों में मुख्य मार्ग राजपथ कहलाता था, सामान्यतः यह पूर्व से पश्चिम की ओर राजनिवास से होकर गुजरता था। मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में भारत और पश्चिमी विश्व के बीच व्यापार की गति तेज हो गयी थी।

दक्षिण भारत की ओर स्थल मार्गों का विकास मौयों के बाद में हुआ। राजमार्ग उस समय काफी विस्तृत और दूरस्थ स्थानों तक जाते थे। एक राजमार्ग मध्य गंगा के मैदान की ऊपरी गोदावरी घाटी से जोड़ता था और दूसरा राजमार्ग मध्य गंगा के मैदान को दक्षिणी–पश्चिमी समुद्र तट से। एक राजमार्ग पूर्वी भागों से होता हुआ गंगा की निम्न घाटी की ओर चला जाता था। दूसरा भृगुकच्छ होकर जाता था।'' इस प्रकार प्राचीन काल में कई राजपथों का निर्माण हुआ, जिनका उत्तरोत्तर विकास होता गया।

प्राचीन भारत में सड़कों पर यात्रियों के आराम के लिये धर्मशालायें होती थीं। बस्ती का निर्माण सड़कों एवं मार्गों के निर्माण के साथ आरम्भ किया जाता था। नगर की आकृति और योजना मार्गों के विन्यास – पद विन्यास पर निर्भर होती थी। मार्ग बस्ती के संरचनात्मक आधार का कार्य करते थे। मुख्य मार्ग ही आगे चलकर बस्तियों की मुख्य सड़कों में परिणत हो जाते थे। बस्ती के भीतर रथों, गाड़ियों के लिये प्रयुक्त छोटी सड़क की चौड़ाई कम से कम 1.8 होती थी। बड़ी सड़क से अनेक सड़के अलग–अलग स्थान पर आकर मिलती थी।[29]

इसके अतिरिक्त नगर की सुन्दरता को बढ़ाने के लिये जगह–जगह पर उद्यानों एवं सरोवरों का निर्माण किया जाता था। अयोध्या नगर में छोटे–छोटे जल स्रोतों को जिनका पानी सब ओर बह जाया करता था, मजदूरों के द्वारा चारों ओर से बांधकर अधिक जल वाला बनाया गया था। इसी प्रकार यूनानियों ने तक्षशिला नगर की सुन्दरता का वर्णन करते हुये कहा है कि इस नगर के सौन्दर्य की वृद्धि एक बगीचा द्वारा होती थी, जो काफी लम्बाई–चौड़ा था तथा चारों तरफ एक दीवार से सुरक्षित था। रामायण में चर्चा मिलती है कि साकेत अयोध्या नगरी के चारों ओर उद्यान तथा आम के बगीचे थे, लम्बाई एवं चौड़ाई की दृष्टि से वह पूरा विशाल थी तथा सागवान के वन उसे सब ओर से घेरे थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में जो भी नगर बनाये गये उनका आधार वैज्ञानिक था, जो सुरक्षा, व्यापार, सुन्दरता एवं सामाजिक जीवन के उच्चतम मानकों को पूरा करते थे, जिनके निर्माण में राजा एवं राज्य की मुख्य भूमिका रहती थी एवं राजा द्वारा नियुक्त अधिकारियों की देख–रेख में इनका निर्माण होता था, जिसमें परिखा, बाड़ा, बुर्ज, अट्टालिका, सड़के, गलियाँ, उद्यान, सरोवर, राजपथ एवं व्यापारिक मार्गों का उचित मापन के आधार पर निर्माण किया गया था।

सन्दर्भः

1. बोस ए. एन., सोशल एण्ड रूरल एकोनामी आफ नादर्न इण्डिया, पृ0 200, सेकेण्ड एडीशन, फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1961
2. दीघनिकाय, सम्पादित डेविड्स टी. डब्ल्यू रिज एण्ड स्टालिन जे कारपेन्टर 2.16, 1.16 लंदन आक्सफोर्ड 1890–91
3. जातक, 1, 297 उद्धृत– राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगरी जीवन, पृ0 231, प्रथम संस्करण, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद
4. रघुवंश, पण्डित शंकर, 16.38 गर्वनमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, 1897
5. जातक 3, 365 उद्धृत– मुकर्जी, राधा कुमुद, हिन्दू सभ्यता, पृ0 305, चतुर्थ संस्करण, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
6. कोरोत्स्काय, अ, भारत के नगर, पृ0 59, पी.पी.एच., दिल्ली, 1987
7. अर्थशास्त्र, कौटिल्य 13.3.2
8. राजोवाद जातक।
9. कोरोत्सकाय, अ, पृ0 86
10. बोस. ए. एन., भाग–1, पृ0 204
11. मार्शल, जान, ए गाइड टू तक्षशिला, दिल्ली, 1936, पृ0 3
12. दीघ निकाय 2.226, डेविड. टी. डब्ल्यू. रिज एण्ड कारपेन्टर जे. स्टाविन, लन्दन, 1890–91
13. कोरोत्सकाय, अ, पृ0 69
14. वही, पृ0 77
15. मत्स्य पुराण, अध्याय 217, पंक्ति 24, अनुवाद आप्टे, हरिनारायण
16. वही, पृ0 217
17. राय, उदय नारायण, वाटर्स, पृ0 252
18. मैक्रिण्डल, जे0 डब्ल्यू, एन्शिएन्ट इण्डिया ऐज डिसक्राइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन, पृ0 68, 1977
19. मत्स्य पुराण, वही, अध्याय 217
20. महाभारत, सभा पर्व 21.2
21. मैक्रिण्डलज, वही, खण्ड 26, पृ0 64
22. अष्टाध्यायी, बसु सतीश चन्द (अनुवाद), 3.1.17
23. महाउग्ग जातक
24. अर्थशास्त्र, 5.1, पृ0 57 (अनुदित शास्त्री)
25. अर्थशास्त्र, वही, 19.3.2
26. कोरोत्स काया अ, पृ0 631
27. मैक्रिण्डल (पूर्वोक्त), पृ0 661
28. महाभारत, 3.61, 21, 231
29. कोरोत्सकाया अ, पृ0 781
30. रामायण, अयोध्याकाण्ड–सर्ग–2
31. बोस, ए0एन0, पूर्वोक्त, पृ0 210

सलाम कहानी संग्रह में चित्रित आत्मसंघर्ष का स्वरूप

डॉ. दशरथ राम*

सारांश

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित समाज और उसमें घटित होने वाली परिस्थितियों का विश्लेषण बड़े ही बारीक दृष्टिकोण से किया है। वे इस समाज में रोजमर्रा के जीवन में धटित होने वाली घटनाओं के न केवल द्रष्टा ही रहे बल्कि भोक्ता भी थे। हिन्दी दलित कहानी का समकालीन परिदृश्य आठवें दशक में तेजी से उभरता है जिसमें कई नए रचनाकार उभरकर अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं, और अपनी कहानियों के द्वारा दलित समाज को एक मजबूत आधार देने की कोशिश करते हैं। दलित कथाकारों का यह प्रयास जहाँ सर्जनात्मक आवेग से स्वयं को तलाशने की प्रक्रिया के साथ–साथ सामाजिक परिवेश की गंभीर चुनौतियों से टकराता है, वहीं हिन्दी कहानी का परिचय उन स्थितियों और चरित्रों से कराता है जिनसे हिन्दी रचनाकार अनभिज्ञ था। दलित जीवन की नारकीय विभीषिकाएँ जहाँ दलित कहानियों को जीवन से जोड़ती हैं, वहीं ये कहानियाँ मानवीय सरोकारों को प्रतिबद्धता के साथ प्रस्तुत भी करती हैं। अपनी अस्मिता की तलाश और व्यापक स्तर पर अपने अधिकारों के प्रति सजगता इनमें स्पष्ट दिखाई पड़ती है। सामाजिक जीवन के अन्तर्सम्बन्धों की जटिलता ने जो खाई पैदा की है, उसे पाटने का काम भी दलित कहानियों की प्राथमिकताओं में है। सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ और अन्तर्विरोध दलितों में भी हैं, जिनके प्रति दलित कथाकार उतने ही निर्मम हैं, जितने गैर–दलितों के प्रति।

मुख्य शब्दः अस्मितामूलक विमर्श, सौंदर्यशास्त्र, सांस्कृतिक गठजोड़, सामंतवाद, सामाजिक विडंबना, आत्मसंघर्ष, वर्ग–संघर्ष, पित्तृसत्तात्मक, जिजीविषा

परिचयः–

साहित्यिक रचनाएँ मनुष्य के मस्तिष्क पर पड़नेवाले विभिन्न सामाजिक जीवन के प्रतिबिम्बों की उपज होती हैं। जो कला–रूप सामाजिक चेतना से कला का और सामाजिक दायित्वों से कलाकार का सम्बन्ध–विच्छेद करता है, वह मनुष्य की मानवीय गरिमा के विरुद्ध कार्य करता है। मनुष्य की संचेतना उसके सामाजिक अस्तित्व से ही निर्धारित होती है। यदि समीक्षक दलित समाज के जीवन से परिचित नहीं है और उसके अनुभवों की दाहकता से अपरिचित है तो वह दलित साहित्य की समीक्षा प्रामाणिक रूप से अथवा निष्पक्ष होकर नहीं कर सकता, इसके लिए उसे दलितों के अनुभव से गुजरने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि भारतीय समाज–व्यवस्था, जाति व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था, ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था, सामाजिक दशा, भारतीय संस्कृ ति, आदि का गहन अध्ययन नितान्त जरूरी है। दलित साहित्य की सामाजक प्रतिबद्धता शीर्षक से ओमप्रकाश वाल्मीकि खुद लिखते हैं कि ''दलित साहित्य का वैचारिक आधार डॉ. अम्बेडकर का जीवन–संघर्ष एवं ज्योतिबा फुले और बुद्ध का दर्शन उसकी दार्शनिकता का आधार है। सभी दलित रचनाकार इस बिन्दु पर एकमत हैं कि ज्योतिबा फुले ने स्वयं क्रियाशील रहकर सामन्ती मूल्यों और सामाजिक गुलामी के विरोध का स्वर तेज किया था। ब्राह्मणवादी सोच और वर्चस्व या प्रभुत्व के विरोध में उन्होंने आन्दोलन खड़ा किया था। यही कारण है कि जहाँ दलित रचनाकारों ने ज्योतिबा फुले को अपना विशिष्ट विचारक माना वहीं डॉ. अम्बेडकर को अपना शक्तिपुंज स्वीकार किया। ऐसा शक्तिपुंज जिससे समूचा दलित लेखन वैचारिक ऊर्जा ग्रहण करता है। डॉ. अम्बेडकर और ज्योतिबा फुले के विचारों की प्रखर शक्ति पाकर दलित साहित्य आन्दोलन प्रगति की ओर बढ़ रहा है।''[1]

भारत में वर्ण–व्यवस्था का स्वरूप बहुत ही गहरा है। भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था की शुरुआत प्राचीन समय से चली आ रही है। भारतीय शास्त्रों और वेदों में इसका प्रारंभिक समाज में समानता व एकता बनाए रखने की दृष्टि से हुआ है। भगवत गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः''[2] अर्थात् मैंने चारों वर्णों की रचना गुण और कर्म के आधार पर किया है। पुनः वे आगे कहते हैं कि ''ब्राह्मण क्षत्रियांवेशां शूद्राणां च परन्तप, कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्भुणैः''[3] अर्थात्

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी–विभाग, टी.पी.वर्मा कॉलेज, नरकटियागंज, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के कर्तव्य उनके स्वभावजन्य गुणों के आधार पर विभाजित किए गए हैं। अर्थात व्यक्ति का ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कहलाना गुण एवं कर्म के अधीन है। व्यक्ति कुल विशेष में जन्म लेने से उस वर्ण का सदस्य नहीं बन जाता। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण उसकी योग्यता एवं निष्पादन पर आधारित है, जन्म पर नहीं यह गीता की स्वीकृति है। वेद शास्त्रों का ही मानना है कि शुद्र अन्य तीनों वर्षों की सेवा इसलिए करता है क्योंकि वह पिछले जन्म में पाप किया था। यह पाप–पुण्य की साजिश समाज में बड़े ही सफाई से बिछाई गई है जिसका प्रभाव अनवरत चला आ रहा है, लेकिन उसकी इच्छाएँ और पेट की भूख को ही न मिटा पाने की चाह ने उसे कभी भी इस विषय पर सोचने के लिए विवश नहीं किया। और वह मुक बनकर इसका शिकार होता गया। भारतीय सामाज की इस विडंबना को देखते हुए ही मुनरो ने कहा था कि पूर्व ने पश्चिम को बहुत कुछ दिया इसलिए पश्चिम उसे जगदगुरु मानता रहा। यह प्रशंसा बहुत उत्कृष्ट और अच्छी लगती है, लेकिन हमने अपने ही घर में रहने वाले दलित वर्ग को कभी नहीं देखा। निःसंदेह मुनरो का यह कथन हमारे सामाजिक कुकृत्यों की तरफ इशारा करती है जो न केवल अपने वेद–शास्त्रों के अहम में पड़कर स्वयं को पूरे देश का जगदगुः घोषित करने में अपनी प्रशंसा समझता है जबकी स्वयं के घर में पक्षपात की रणनीति से खुद को ही नहीं बचा पता।

किसी भी राष्ट्र में समाज, परिवार और वहाँ की व्यवस्था, मनुष्य जीवन के विकास के लिए उत्तरदायी होती है। मनुष्य का अस्तित्व इन सबके केंद्र में स्थित होता है। यदि मनुष्य ही नहीं रहेगा तब इसका अस्तित्व किस काम का। शायद यही समझ कर प्राचीन समय में हमारे वेद शास्त्रों के रचयिताओं ने ऐसे नियम बनायें जिसमें उन्होंने चार वर्णों का सृजन किया लेकिन उनमें से एक वर्ण का स्थान ऐसे जगह पर निश्चित किया जहां वह अपने समकक्ष इन तीनों वर्णों की सेवा का कार्य करता रहे। और उनके संरक्षण में रहते हुए अपने आप को जीवित रखे जिससे कि वह इनका उपयोग आजीवन करता रहे। इनसे अपने घर के गंदे काम (बिष्ठा साफ करवाने) करवाने में इनका भरपूर सहयोग ले सकें। और सेवा के बदले उन्हें प्रसाद के रूप में अपना जूठा देकर उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करता रहे। हिंदी साहित्यिक लेखन पर चिंतन करने के पश्चात यह जानकर और भी अधिक दुःख होता है जब इन चार वर्षों में रहने वाला शूद्र भले ही अपने तीनों वर्षों की सेवा करने की दृष्टि से ही इनके समकक्ष रहता हो निश्चित तौर पर उनके दुःख–सुख में सहभागी भी बनता रहा है। उनके आत्म सम्मान की रक्षा भी करता रहा है। फिर भी इतिहास के किसी भी पन्ने पर उसकी चर्चा तक नहीं की जाती। इतिहास इस संबंध में मूक बना हुआ दिखाई पड़ता है। क्या जीवन भर सेवा करने का यही परिणाम मिला है, कि बस ये शोषित होने के लिए ही पैदा होते हैं। समाज में इनके लिए ऐसा कोई भी स्थान नहीं जो अन्य तीनों वर्षों के लिए है। समाज के इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए बाबा साहब ने लिखा है कि ''भारत में दलितों कि स्थिति गुलामों से बदतर है। गुलाम तो गुलामी के साथ संघर्ष करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है, परंतु एक दलित जन्मना जाति की बेड़ियों से कभी मुक्त नहीं हुआ।''[4] यह कथन जितना यथार्थ है उतना जी कष्टप्रद भी।

ओमप्रकाश दलित समाज समाज से ताल्लुक रखने के साथ–साथ उस समाज के एक–एक पहलुओं, विषंगतियों एवं दैनदिनी स्थितियों से परिचित हैंय यही कारण है कि उनकी रचनाओं में दलित समाज का संघर्ष, दीन–हीन परिस्थितियों का निरूपण, मानसिक प्रताड़नाओं एवं सामाजिक छद्म व पारंपरिक शोषण का यथार्थ रूप देखने को मिलता है। उनके कहानी संग्रह 'सलाम' में कुल 14 कहानियाँ संकलित हैं जो दलित जीवन की संवेदनशीलता और अनुभवों से उपजी कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ हमें ऐसे अनुभवों से साक्षात्कार कराती हैं, जहाँ हजारों साल की आतंरिक पीड़ा किसी अंधेरे घर के एक कोने में दुबकी पड़ी सी दिखाई पड़ती है। वाल्मीकि जी अपनी इन कहानियों के माध्यम से इन्हीं आतंरिक पीड़ाओं को द्रष्टव्य कर समाज के समक्ष रखने की कोशिश की है। तथा उनके द्वारा रचित उन बाह्य आडम्बरों, छलावों एवं सामाजिक षडयंत्रकारी साजिशों का पर्दाफाश करते हुए उसके नीव को ही हिला देने की कोशिश की है। लेखक के द्वारा रचित सभी पात्र इसी विचार को धारण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। पात्रों के अंतर्गत यही प्रखरता दलित समुदाय तथा दलित विमर्श को सार्थक एवं गुणात्मक बनाता है।

वस्तुतः दलित समाज के अस्तित्व की पीड़ा इतनी भयावह और अमानवीय है कि उसे अपने अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न खड दिखाई पड़ता है। वह मनुष्य की योनि में जन्म लेने के बावजूद भी सामाजिक रूप से पशुवत जीवन जीने के लिए निरंतर मजबूर किया जाता रहा है। चाहे वह पढ़ लिखकर किसी सम्मानित स्थान पर ही क्यों न पहुँच जाए। फिर भी वह समाज के उस छद्म रूपी जाल से अपने आप को मुक्त नहीं कर पाता। वह समाज के लिए भंगी, चमार, मेस्तर और चूहड़ा के रूप में ही पहचाना जाता है। इसका यथार्थ

स्वरूप श्सलामश में भी देखा जा सकता है। श्सलामश कहानी का हरीश (दलित) और कमल उपाध्याय दोनों खास दोस्त हैं। उनके बीच जात–पात का कोई मसला नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन एक दिन जब कमल, हरीश को अपने घर लेकर जाता है तब कमल की मां हरीश से पूछती है कि हरीश तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं? पर जब हरीश द्वारा उन्हें यह पता चलता है, कि उसके पिता नगर निगम में सफाई कामगार हैं। अर्थात् दलित हैं। वैसे ही वह अपने बेटे कमल के गाल पर थप्पड़ मारते हुए कहती हैं, ''पता नहीं कहां–कहां से इन कंजड़ों को पकड़कर घर ले आता है। खबरदार जो आगे से किसी हरामी को दुबारा यहाँ लाया...।''[5] कमल के विचार और उसकी माँ के विचार में शिक्षा और रुढ़िवादी सोच से निर्मित विचार का स्वरूप दिखाई पड़ता है। कमल चूँकि पढ़ा–लिखा और जागरुक सवर्ण पात्र है, इसीलिए वह जाति–पाति के छद्म और उससे उपजने वाले बंधनों को उतना नहीं समझ पाताय लेकिन उसकी माँ इससे परे ब्राह्मणवादी संस्कार एवं रुढ़िवादी सोच से निर्मित पात्र हैं इसीलिए वे इस छद्म को न केवल जानती हैं बल्कि उसके बने रहने में ही अपना हित समझती हैं। यही कारण है कि वे जैसे ही हरीश की जाति से वाकिफ होती हैं उन्हें उनकी जातिगत श्रेष्ठता का बोध हो आता है और इसी बोध का आभास कराने हेतु वह अपने बेटे कमल को थप्पड़ मारती हैं जिससे हरीश तथा उस जैसे दलित युवक फिर कभी किसी सवर्ण लडके से दोस्ती न कर सके। यही नहीं हरीश के चले जाने पर वह अपने पुरे घर को गंगाजल से धोती हैं ताकि कमल को यह आभास हो सके की ये कितने घृणित, अपवित्र और गंदे लोग हैं। वह अपने बेटे कमल को समझते हुए कहती भी हैं कि बेटे, ''इनके संस्कार गलत हैं, ये छोटे लोग हैं। इनके साथ बैठने से बुरे विचार मन में पैदा होते हैं...''[6] अर्थात् दलित हरीश का कमल के घर में प्रवेश कर जाना एक अपराध है, क्योंकि वह एक दलित है, अछूत है, अशुद्ध है तथा संस्कारविहीन है वेशक वह पढ़ा–लिखा कमल का सहपाठी है तो क्या हुआ। इसे एक मनोवैज्ञानिक साजिस भी कहा जा सकता है जिसके माध्यम से सवर्ण प्रवृति के लोगों द्वारा समाज में इसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी जीवंत रखा जाता रहा है। गाँव के इन्हीं सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए बाबा साहब ने गांव को भारतीय गणतंत्र की अवधारणा का शत्रु माना था। उनका विचार था कि हिंदुओं की ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांव में होता है। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि ''भारतीय गांव हिंदू व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद की साक्षात अवस्थाएं देखी जा सकती हैं। उनमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के लिए कोई स्थान नहीं। भारतीय गांव ब्राह्मणों के लिए स्वर्ग हो सकता है परंतु दलितों के लिए तो वह नरक ही है।''[7] वास्तव में यह परंपरावादी व्यवस्था हमारे अंदर इस तरह घर कर जाती है कि हम उससे निकल ही नहीं पाते। और निरंतर उसी लके आवरण में पिराते जाते हैं। और इसे ही हम अपनी दैनदिनी का हिस्सा बनाकर जीते रहते हैं।

सामाजिक विडम्बना और स्थिति का मूल्यांकन ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी श्बैल की खाल में बखूबी देखने को मिलता है, जहाँ एक ओर बेबसी भी दिखाई पड़ती है और मजबूरी भी। पंडित जी के बैल को मरे हुए सुबह से दोपहर हो गया था, लेकिन वह मृत बैल अभी भी सड़क के बीचों–बीच कुएं के पास पड़ा हुआ था। उसे रास्ते से हटाना बहुत जरूरी था। लेकिन उसे वहाँ से हटाना तो दूर उसके पास जाने की हिम्मत किसी को नहीं होती थी। इस कार्य को सिर्फ काले और भूरे ही कर सकते थे। इसीलिए पंडित जी ने उनकी तलाश सुबह से ही करवा रक्खी थी। जैसे–जैसे सूर्य ढल रहा था पं. बिरिज मोहन जी की त्योंरिया चढ़ती जा रही थीं। जैसे ही उन्हें काले और भूरे आते हुए दिखाई पड़े। सबसे पहले उन्होंने उनपर अपना गुस्सा निकालते हुए चिल्ला कर कहा, ''कहाँ मर गए थे भोसडी के..... तड़के से ढूंढ–ढूँढ के गोड्डे टूट गए हैं। और इबी आ रहे हो महाराजा की तरियों इस बैल को कौन उठावेगा... तुम्हारा बाप।''[8] निश्चित तौर पर लेखक ने यहाँ काले और भूरे पात्र के माध्यम से दलित व्यक्ति की सामाजिक दशा और उनकी सामाजिक पहचान को रेखांकित करने की कोशिश की है। जहाँ पूरे समाज को इस बात की खबर है कि काले और भूरे के न रहने से गाँव का मलबा, कचरा अथवा गन्दगी को साफ करने वाला भी कोई नहीं है फिर भी उनके परिश्रम, उनकी सोच और जिजीविषा को इस तरीके से प्रदर्शित किया जाता है मानो वे साधारण मनुष्य न होकर पशुओं की योनी से जन्में हों। यह कहानी समाज के उस द्वन्द्वात्मक परिस्थिति से हमें परिचित करती है जिसमें काले और भूरे जैसे पात्रों की अनुपस्थिति व उनके महत्व का पता पूरे गाँव को है, लेकिन इसके बदले उन्हें क्या मिलता है सवर्ण समाज की प्रताड़णा व उनके द्वारा होने वाला अभद्र व्यवहार। यह व्यवहार ही उन्हें अपने स्वयं की पहचान करने की ओर उद्दत करता है तभी तो काले नामक पात्र अपने अस्तित्व पर विचार करते हुए कहता है–

'भूरे हमें यूं काम छोड़ देना चाहिए।'

'क्यूँ... जो हमने इस काम को छोड़ दिया तो करेगा कौण। क्या मरे हुए ढ़ोर–डंगर गाँव में ही पड़े सड़ते रहेंगें...

'सड़ने दे...इस सड़ांध में हम गले गले तक डूब जाते हैं। किसे परवाह है...कोई अपने धोरे (पास) बी ना बैठावे हैं।'[9]

यहाँ काले और भूरे के एक–एक कथन सत्य को उद्घाटित करते हैं। वास्तव में उन्हें इन कामों को करने से भला क्या लाभ है। केवल चंद रुपये जो उन्हें इन मरे मरे हुए पशुओं के चमड़े को बाजार में बेचकर मिल जाते हैं। जिनसे वह अपने परिवार का भरण–पोषण करते हैं, नहीं, उन्हें इस बात की जानकारी हो चुकी है कि यह कार्य अब उनके जीवन को ही नहीं बल्कि उनकी पहचान के लिए घातक है। और भला हो भी क्यों नहीं जिस कार्य को करने के बाद भी समाज में उनके लिए कोई इज्जत नहीं बचती, उनके सदैव नीच, अभद्र और घृणित भाव से ही देखा जाता है, जिनके स्पर्श मात्र से पवित्र स्थान भी अशुद्ध हो जाता है उन्हें भला इस तरह की व्यवस्था और समाज से क्या संबंध। इससे तो कहीं अच्छा इससे स्वयं को मुक्त कर देने में ही है। किसी को इस बात की परवाह ही नहीं होती कि वे भी मनुष्य हैं और एक आम मनुष्य की तरह जीना चाहते हैं। यही कारण है कि वे ऐसे समाज से स्वयं को मुक्त कर लेने में ही अपनी भलाई समझते हैं जहाँ उन्हें न कोई इज्जत मिलती है और न ही कोई भाई–चारे जैसा संबंध।

'सलाम' कहानी संग्रह में ही संकलित कहानी 'कहां जाए सतीश' के माध्यम से लेखक ने यह दिखने की कोशिश करते हैं कि भारतीय समाज में जाति की अवधारणा कितना कुछ मनुष्य की अस्मिता को बनाने और उसकी स्थिति को निश्चित करने में महती भूमिका निभाती है। जब तक इस समाज को किसी व्यक्ति के जाति से परिचय नहीं हुआ रहता, तब तक वह उसे आत्मीय, सहृदयी व स्नेहपूर्ण भाव से अपनाता है। लेकिन जैसे ही उसे, उसकी जाति का बोध होता है तब वह न ही आत्मीय ही रह पाता है और न ही सहृदयी ही। बल्कि वहाँ उसकी स्थिति जातिगत श्रेष्ठता और उच्चता को दिखाने की हो जाती है।

उसकी सामाजिक सदभाव की स्थिति व्यक्तिगत स्थिति और सम्मान की हो उठती है। वह उस समय अपने को सर्वश्रेष्ठ, उच्च कुल का व्यक्ति घोषित करने की चेष्टा करना स्वाभाविक समझता है। यही कारण है कि वह सामने वाले व्यक्ति को तुच्छ, निरीह और कमजोर समझाते हुए उसके साथ व्यवहार करता हुआ नजर आता है। और यदि सामने वाला व्यक्ति दलित समाज का ठहरा तब तो उसके लिए वह अशुद्ध, घृणित, नीच व गन्दा सा ही प्रतीत होता है। क्षण भर के इस परिचय से मानों उसके सारे जीवन पर कलंकित का चिह्न अंकित कर दिया जाता है। पता नहीं उसके मानसिक स्तर पर वह कौन–सी स्थिति घर कर जाती है जिससे वह, उसको छूना तो दूर, उसके बोलने–चालने, उठने–बैठने, पहनने ओढ़ने आदि प्रवृतियों से घृणा का भाव झलकने लगता है। कुछ इसी तरह की स्थितियों का चित्रण इस कहानी के माध्यम से लेखक ने द्रष्टव्य करने की कोशिश की है। इस कहानी में मि. पंत और मिसेज पंत को जब तक यह जानकारी नहीं होती कि सतीश एक दलित परिवार का लड़का है तब तक वह उनके घर बड़े ही आराम से रहता है। तथा उसे अपने ही परिवार का सदस्य मानते हुए उसकी खूब खातेदारी की जाती है, लेकिन जैसे ही उन्हें यह पता चलता है कि सतीश एक भंगी का लड़का है वैसे ही उनके होश उड़ जाते हैं। उनका शारीर किसी अथाह सागर में डूबने लगता है, मानों सारी मान्यताएँ क्षण भर में ही धराशायी हो गयी हों। वे दोनों स्वयं को एक अजीब–से चक्रवात में फँसा हुआ अनुभव करने लगते हैं। उनके चेहरे के सामने यह प्रश्न बार–बार चक्कर लगता रहता है, क्या सतीश एक भंगी होकर हमारे घर में रहता है? उनकी चेतना मानो लुप्त सी हो जाती हैं। उनके लिए अब सतीश वह प्यारा सतीश नहीं रह जाता बल्कि अब वह अछूत, घृणित, अपमानित और नीच जाति के रूप में दिखाई पड़ने लगता है। उसके शरीर का स्पर्श तो दूर, कपड़ों के स्पर्श हो जाने पर मिसेज पंत को ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके शरीर में बिजली सी दौड़ गई हो। यही कारण है कि छत पर सुखा रहे सतीश के कपड़े को वह एक डंडे का सहारे कूड़े–करकट की तरह फेंक देती हैं। कुछ समय पहले का प्रिय, अपने पुत्र के समान प्रतीत होने वाला सतीश अब उनके लिए किसी गन्दी नाली के कीड़े के समान प्रतीत होता हुआ नजर आता है।

भारतीय समाज में केवल दलित पुरुषों की ही नहीं बल्कि दलित स्त्रियों की भी स्थिति दयनीय दिखाई पड़ती है। लेकिन दलित समाज में शिक्षा और जागरूकता की पहल के चलते आज उनमें भी आत्मसंघर्ष के प्रति सचेतता की स्थिति देखने को मिल रही है। एक तरफ जहाँ उन्हें स्त्री होने के कारण पुरुषों से असहनीय आतंरिक पीड़ा झेलना पड़ा है वहीं दूसरी ओर दलित स्त्री होना तो उनके गुलामी को

और सुदृढ़ बनाता रहा है। लेकिन यह सत्य है कि आज वह पुरुषों की गुलामी और उनके शोषण को सहने की बजाय संघर्ष और मेहनत करते हुए स्वयं को एक प्रतिष्ठित श्रेणी में अंकित करना ज्यादा उपयोगी समझती हैं। यही कारण है कि आज वे देश के सर्वोच्च पदों यथा, सरकारी नौकरियों, प्राइवेट नौकरियों व राजनीतिक स्थानों पर न केवल बढ़–चढ़कर भाग ले रहीं हैं बल्कि अधिकाधिक रूप में अपनी उपस्थिति भी दर्ज करवा रही हैं। आज दलित वर्ग की स्त्रियों में चेतना का प्रसार होने से ही वह अपने वर्ग के गंदे और घिनौने कार्यों को छोड़कर अच्छे कार्यों को करने के लिए आगे बढ़ रही है। इनके अन्दर आयी जागरूकता की ही देन है कि वे अपने समाज को एक नई दिशा देने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन कर पा रही हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें अग्गा नामक कहानी में देखने को भी मिल जाता है। अम्मा कहानी की दलित स्त्री पात्र अम्मा अपने बच्चों को न केवल अपने सामाजिक पेशागत कार्यों की करने से रोकती है बल्कि उन्हें पढ़ा–लिखाकर एक अच्छे व प्रतिष्ठित व्यक्ति बनाने की चाह रखती हैं। चूंकि वह पढ़ी–लिखी तो नहीं होती लेकिन सामाजिक पहल और स्थितियों ने उन्हें यह समझने में खलल नहीं डालती की सम्मान और अधिकार पाने के लिए शिक्षा और नौकरी बहुत बड़ा स्थान रखता है। यही कारण है कि वह इस गन्दगी से स्वयं को तो नहीं निकाल पातीं लेकिन अपने बच्चों को इससे बचाने की पूरी कोशिश करती हैं। लेकिन जब उनका छोटा बच्चा उनके विचारों से अलग जाता हुआ दिखाई पड़ता है तब वह उसे समझाते हुए कहती हैं, ''मैं कितने दफे तैन्ने समझा–समझा के हार गई. तैन्ने नचणिया नहीं बनना है। अपनी चच्चा की तरियों सड़कों पे बैंड बाज्जे वालों की गैल में–करता घूमेगा। उसकी हालत देक्खी है.. फेफड़ों में जान न है उसके। सांस ढोकनी की तरियों चले है... और तू उसकी लैन पे चल रहा है. पढ़–लिख के आदमी बणजा.. किसी दफ्तर में किलरक (क्लार्क) नहीं तो चपरासी ही लग जाएगा। इस गंदगी से तो छूट जाएगा। जहाँ न दो टेम की रोट्टी ढंग से मिले हैं, न इज्जत। गले गले तक कर्ज में डूबे हैं। तेरे बाप के तंख्वाह बाद में मिले, सरदार प्रीतम सिंह आके पहले खडा हो जाते। घर–बाहर कहीं भी दो घड़ी का चौन ना है। रोज–रोज की किटकिट... बस यों ही जिंदगानी है कि कोई धीरे भी न बैठावे। जैसे छूत की बीमारी लग जावेगी।''[10] इस पंक्ति की एक–एक वाक्य दलित समाज की वास्तविक स्थिति को रेखांकित करती हुई प्रतीत हो रही है। यह सत्य है कि समाज में स्त्रियों की भूमिका उस समाज के संचालक उत्पन्न करने उसको दिशा देने मैं अग्रणीय होती है। यहीं 'अम्मा' नामक दलित स्त्री पात्र इसी बात का द्योतक है। लेखक को इस बात की गूढ़ जानकारी है कि यदि दलित समाज को जागरुक और चेतनाप्रद बनाना है तो सबसे पहले स्त्रियों का सम्मान और उन्हें जागरुक करने की जरुरत है। वे दलित स्त्रियों के सम्बन्ध में खुद ही लिखते हैं ''दलित संघर्ष में दलित स्त्री का और भी ज्यादा महत्व है क्योंकि समाज में रची–बसी विषमता मूलक समाज संरचना को तोड़ने में दलित स्त्री की भूमिका अहम रही है. जबकि पितृसत्तात्मक मानसिकता ने उन्हें घर की देहरी में कैद करने, उसकी स्वतंत्रता को खंडित करने, उसकी अस्मिता पर चोट करने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ा है।''[11] वाल्मीकि जी की चिंता निश्चित रूप से दलित समाज में स्त्रियों के यथार्थ स्वरूप से परिचित कराता है। क्योंकि चेतना की वास्तविक प्रतीति स्त्रियों के अंदर आयी प्रगति से ही देखी जा सकती है। वह उस जागरूकता से न केवल अपने समाज को मार्गदर्शित करती हैं बल्कि समय पड़ने पर एक तटस्थ दीवार के रूप में खड़ी दिखाई भी पड़ती है। दलित साहित्य की सामाजक प्रतिबद्धता शीर्षक से ओमप्रकाश वाल्मीकि खुद लिखते हैं कि ''साहित्य सृजन दलित जीवन के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने के साथ ही उसे पहचानने का भी एक साधन है। साहित्य और कला के प्रति यह दृष्टिकोण सामाजिक व्यवस्था में साहित्य के महत्त्व का उचित मूल्यांकन भी है। दलित साहित्य में दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नहीं है, बल्कि साधारण परिस्थितियों में साधारण चरित्रों का वास्तविक पुनर्सृजन है। इस कार्य में दर्शन और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नहीं है– पाठक की चेतना और अनुभूति का प्रभावित करनेवाली गहन संवेदना से ही यह सम्भव है।''

निष्कर्षः–

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानी संग्रह 'सलाम' में संकलित सभी कहानियों दलित जीवन की स्थितियों को यथार्थ रूप में प्रकट तो करती ही हैं। साथ ही साथ उस समाज के संघर्षपूर्ण जीवन की जिजीविषा को भी रेखांकित करती हुई दिखाई पड़ती हैं। दलित समाज अपने जीवन के प्रमुख साधनों से आज भी वंचित हैं। वह आज भी उसी प्रकार झोपड़ियों में निवास करता हैं जैसे विगत वर्षों से उनके पूर्वज करते रहें हैं। वह आज भी अपनी नियति और गरीबी को भाग्य की देन समझते हैं। शिक्षा अभी भी उनसे कोसो दूर है। वे आज भी वही गंदे कार्य करने के लिए विवश है जिससे

समाज उन्हें निम्न श्रेणी में स्थान देता है। आखिर इन सब का जिम्मेदार कौन है? आज देश को स्वतंत्र हुए 60–70 वर्ष हो चुके हैं। क्या लोकतंत्र ने उन्हें कुछ भी नहीं दिया? क्या उनका जीवन ऐसे ही अनवरत बना रहेगा? क्या उनकी कोई अपनी स्वतन्त्रता ही नहीं? यह प्रश्न निश्चित तौर पर हमें चिंतन करने पर मजबूर करती है।

संदर्भ–सूचीः–

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण–2019, पृ. 59
2. भगवद्गीता– 4/131
3. भगवद्गीता– 18/41
4. संधू, कुमार, डॉ0 जोगिंदर, दलित चेतना के संदर्भ में कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि, साहित्य संस्थान, लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद (उ.प्र.), संस्करण–2016, पृ. 87
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं–2014, पृ. 14
6. वही, पृ. 15
7. अंबेडकर, बाबा साहेब डॉ. भीमराव, सम्पूर्ण वांगमय (भाग–13), सामाजिक न्यास और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण–2016
8. सलाम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं–2014, पृ. 33
9. वही, पृ. 35
10. वही, पृ. 118
11. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृ. 117
12. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण–2019, पृ. 58–59

डॉ. अनिल सुलभ की काव्य–दृष्टि

मुन्ना कुमार राम*
प्रो. कल्याण कुमार झा**

सारांश

साहित्य के विभिन्न विधाओं में काव्य सर्वप्रिय विद्या है। शब्द, अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता से युक्त वाक्य रचना काव्य कहलाता है। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुए डॉ. सुलभ वर्षों से समाजसेवी, पत्रकार, कथाकार, काव्य एवं गीतकार के रूप में साहित्य एवं समाज की सेवा कर रहे हैं।

काव्य संग्रह में 'मरूथल सा चीर प्यासा' वर्ष 2017 में कवि की अंर्तआत्मा की अवाज बनकर आई। इस संग्रह में कवि ने प्राकृतिक चेतना, लोकचेतना, रहस्यवाद, राष्ट्रप्रेम के साथ अपने कोमल कंठों से प्रेम एवं विरह के गीत गाये हैं। मैं 'मरूथल सा चीर प्यासा' शीर्षक से प्रतीत होता है कि कवि के अंदर अन्नत प्यास की अद्भूत अभिव्यक्ति है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि युगों से प्रेम सुधा की तलाश में भटक रहे हैं।

अंततः कवि सुलभः प्रणय गीत के अद्भुत रचयिता हैं। इनकी रस–छंद एवं अलंकारों से सुसज्जित रचना संग्रह इनकी साहित्यिक प्रेम पिपासा को स्पष्ट दर्शाती है।

बीज शब्दः– रहस्यवाद, समाजसेवी, लोकमंगल, प्रकृति, साहित्यिक

काव्य साहित्य का सबसे कोमल एवं स्निग्ध अंग रहा है। साहित्य के विभिन्न विधाओं में 'काव्य' सबसे प्राचीन विद्या होने के साथ–साथ सबसे लोकप्रिय विद्या भी है। ''शब्द, अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता से युक्त वाक्य रचना को काव्य कहते हैं।''[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय के इसी मुक्ति के साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करते आई है उसे ही काव्य कहते हैं।

06 नवम्बर 1962 ई. को बिहार के वर्तमान शिवहर जिला में डॉ. सुलभ का जन्म हुआ। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन कदमकुआँ पटना के अध्यक्ष पद को सुशोभित कते हुए डॉ. सुलभ समाजसेवी, कथाकार, पत्रकार एवं कवि–गीतकार के रूप में साहित्य साधना में लीन है। वर्ष 2017 में 'मैं मरूथल सा चीर प्यासा' नामक काव्य संग्रह कवि की अर्न्तआत्मा की आवाज बनकर साहित्य सुधियों के सम्मुख आ पहुँची। इस काव्य पुस्तक में कवि अपने कल्पनाशक्ति के सहारे लोककल्याणकारी भावनाओं को उन्मख करने का प्रयास किया है। इस काव्य संग्रह 'मैं मरूथल सा चरी प्यासा' की प्रस्तावना में शशिशेखर तिवारी जी ने लिखा है– ''डॉ. सुलभ की नई काव्य कृति 'मैं मरूथल सा चीर प्यासा' उनके कोमल कंठ से उच्छ्वसित गीतों का संग्रह है। सुलभ जी के गीत पूरी तरह शास्त्री छंदों में बद्ध न होकर भी आंतरिक भावों के कारण मन–प्राणों के मर्म का स्पर्श करते हैं। गीतकार ने अपने हृदय की प्यास को मरूथल से उपमित किया है। मरूथल की बालूका–राशि इतनी प्यासी रहती है कि दीर्घ कालावधि तक बारिस की बौछार करने वाले बादल भी उसे तृप्मत नहीं कर पाते।

'मैं मरूथल सा चीर प्यासा' इस शीर्षक को पढ़ने के बाद अन्नत प्यास की अद्भूत अभिव्यक्ति है। ऐसा मालूम होता है कि कवि युगों–युगों से प्रेम सुधा की तलाश में भटक रहे हैं।

''मैं मरूथल–सा चिर प्यासा,
तु प्रेम सुधा की अविरल धारा।
मैं तेरा एक सीप स्वाति का
तुम मेघ का मृदु जल सारा।''[2]

प्रथम दृष्टि में ही मरूथल सा चीर प्यासा काव्य संग्रह प्रणय के काव्य संग्रह लता है परंतु इस संग्रह में कवि ने अपने मन के कोमल भूमि पर उपजे प्राकृतिक चेतना, राष्ट्रप्रेम, रहस्यवाद, लोकमंगल, लोकचेतना

---

* शोध–छात्र, यूजीसी–नेट, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
** विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

एवं प्रेम में उत्पन्न विरह व्यथा एवं हर्षो उल्लास के पुष्प अपने काव्यों में खिलाए हैं। डॉ. सुलभ की प्राकृतिक चेतना को इन पंक्तियों से समझ सकते हैं–

"बागमती का कल–कल बहना,
खग–वृन्दो का कलरव करना,
कोकिला की कूक से उर में,
हुक मीठी–मीठी सी उठना।"[3]

मानव स्वभाव से ही सौन्दर्य–प्रेमी माना जाता है और प्रकृति अपने आप में सुन्दरता का स्रोत है। मानव और प्रकृति का सम्बंध अनादि और चिर पुरातन है। डॉ. सुलभ के कोमल ह्रदय ने जो जो कुछ प्राकृति से अनुभव किया है अपनी कविताओं में चित्रित करने का सफल प्रयास किया है–

टह–टह लाल पलास
खुश रंज दिख रहा है।
सूर्यमुखी ने अलसाई आखें
अब खोल ली है
गुलाब की कलियाँ भी
शाखों पर निगाह डाली है
एक मादक गंध हवा में
तैरने लगा है।"[4]

छायावाद कालीन कवि गया प्रसाद शुक्ल स्नेही ने लिखा है–

भरा नहीं भावों से जिसमें गंगा का रसधार नहीं
वह ह्रदय नहीं पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

डॉ. सुलभ उपरोक्त पंक्तियों को चरितार्थ करते हुए राष्ट्र को समर्पित करते है ये पंक्तियाँ–

"वीरों क्यों हो मौन तुझे,
किस जड़ता ने छीना?
सज्जता पीड़ित हो तो
वीरों को क्या जीना?"[5]

डॉ. सुलभ की यह देश–प्रेम की भावना हमें अपने देश एवं नागरिकों को मौन या चुप्पी तोड़ने का आह्वान कराती हैं, हम अराजकता एवं अन्य राष्ट्रव्यापी विपदाओं के समय चुप्पी तोड़े और देश को अपना सर्वस्व समर्पित करें। डॉ. सुलभ स्वंत्रता संग्राम में शहीद हुए शहिदे आजम भगत सिंह को लक्ष्य पर लिखे कविता 'भगत का बलिदान' शीर्षक में लिखते हैं–

"अग्नि–पुंज था पुरुषार्थ का
क्रांति की दिव्य मशाल।
सागर माथा की भांति था
भव्य जिसका भाल।
फांसी का फंदा चूमने वाला,
वह था बड़ा महान।"[6]

साहित्य में रहस्यवाद का अपना एक अलग दृष्टि है। रहस्यवादी भावना का उदय कबीर के बाद प्रेममार्गी काव्य या सूफी काव्यधारा से होते हुए छायावादकाल और उसके कुछ उत्तरकाल तक दिखाई देता है। महादेवी, प्रसाद व निराला के काव्य में रहस्यवादी भावना स्पष्ट दिखाई देता है। रहस्यवाद को समझाते हुए प्रोफेसर रामकुमार वर्मा ने कहा है "रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर्हित प्रवृति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल सम्बंध जोड़ना चाहती है और यह सम्बंध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता।"

डॉ. सुलभ की कविता 'ओ परम अज्ञात' रहस्यवाद से ही ओत–प्रोत होकर रचा गया है। इन पंक्तियों के माध्यम से कवि के उस उन्नत परम अंजान सा अज्ञात के प्रति श्रद्धा भक्ति को समझा जा सकता है–

"शास्त्रों ने कहा तुम महा शून्य हो।
गुण भी तुम और गुणातीत गुण्य हो।

तुम ही सब कुछ, कुछ भी नहीं तुम।
नेति!नेति! फिर वही–वही तुम!
कहाँ हो? किधर हो तुम?
ओ परम अज्ञात किधर हो तुम?''[7]

डॉ. सुलभ ने महादेवी वर्मा के भांति अन्नत अज्ञात को आवाज दे देकर पुकार रहे है। वह महाशून्य को निहारते हुए परम अज्ञात की तलाश में मग्न है। डॉ. सुलभ कृत 'मैं मरूथल सा चिर प्यासा' पुस्तक एक प्रेम गीत संग्रह है, शीर्षक को पढ़ने मात्र से ही कवि मन की प्रेम प्यास को आंका जा सकता है। कवि अपनी प्रेयसी की तुलना चांद से करते हुए लिखते हैं–

''बड़े दिनों के बाद,
आज पूर्ण चन्द्र को देखा है।
कितना मिलता है तुमझे
बिल्कुल तेरे लेखा है।
वहीं ज्योत्सा, वही रंग
जैसे धवल है तेरा अंग।''[8]

अपने कथन में कवि सुलभ ने स्वयं कहा है ''दुआ करे कि मुझ पर कविता सुन्दरी ऐसी टूट कर बरसे की मेरे जन्म–जन्म की प्यास बुझ सके और मैं रस गंगा की अमृत धारा में डुबकर लिखूँ। जिस प्रकार कवि बच्चन अपनी मधुशाला में लिखते वक्त मधु में गोते लगाते हैं, कुछ वैसे ही कवि सुलभ भी प्रेम सरोवर में डुबते नजर आते हैं–

''कोकिला का संग ले गा,
सप्त स्वरों में गान!
ऐसी तान छेड़ तनम न का,
रहे न कोई भान!
गाता रह तू गाता रह,
निशि दिन साँझ–सवेरे।
कुछ गा मन–कोकिल मेरे!''[9]

काव्य विधा में साहित्य में युगों–युगों से प्रेम के रस स्रोत बहाए है, पराग एवं सौरभ बिखेरने का काम किया है काव्य और प्रेमभावना का वही सम्बंध है, जो हृदय और धड़कनों का होता है। भला ऐसा कौन सा अमर काव्य है जो प्रेम के स्वरों के बिना अमर होकर गुंज सका और भला वह कौन सा प्रेम है जिसमें विरह नहीं हो। डॉ. सुलभ के काव्यों में घनानंद, मीरा और महादेवी जैसी विरह भावना दिखाई देती है–

''पावस बीता, शदर भी बीता
एक–एक दिन गिन–गिन।
एक–एक क्षण युग–युग सा बीता,
हाय तुम्हारे बिन!''

कवि के हृदय की पीड़ा कहीं किसी गीत में विरहिणी वियोगनी के हृदय में प्रज्ज्वलित शिखा बन जाती है फिर वियोगी मन से अनायास ही फूट पड़ता है–

''आम्र–कुंज से मंजरी झर गयी,
आए निकल टिकोरे।
विरह–अग्नि में जल रही,
मारे हिया हिलोरे!
व्याकुल नयन झरे पावस सा
यहाँ, कहाँ ऋतुराज।''[10]

डॉ. सुलभ जी की गीत कविता में अलग–अलग भावों में शब्दालंकारों का प्रभाव अलग–अलग देखने को मिलता है लेकिन फिर भी भाव ध्वनि एवं विचार एक दूसरे से लिपटे हुए है।

''जब तुम्ही हुए प्रतिकूल,
तो दुनिया को क्या कहें!
ऋतु हुआ नहीं अनुकूल

दुनिया को क्या कहें!"

निष्कर्षः–

डॉ. सुलभ की काव्यभाषा अलंकृत एवं साहित्यिक है इनका काव्य संग्रह मूलतः प्रेम, आनन्द के रसों से लबालब भरा हुआ है। यह काव्य कला में पूर्णतः निपूर्ण है इनके काव्यों में प्राकृतिक प्रेम, राष्ट्रप्रेम, रहस्य व लोक चिन्तन के साथ–साथ हर्षोल्लास एवं विरह काव्यों की प्रधानता है। इनके काव्यों में प्रेम की परिधि विस्तृत है। इनके काव्यों में हृदय के उमड़े भाव जब गीत बनकर शब्दों में ढलते हैं तो सम्पूर्ण वातावरण प्रेममय हो जाता है। कवि मन किसी काव्य में विरहणी से किसी काव्य में प्रेम पिपासा को व्यक्त करता है। कवि सुलभ की प्रायः रचनाएँ कोमल प्राण कवि के अंतर से प्रस्फुटित कोकिल कंठ से निकले स्वर के सदृश प्रेमी आत्मा की पुकार है–

"जीवन धर्म जिसने पहचाना
सप्त व्योम में उसका ठिकाना।
कवि सुलभ की प्यास बुझाना।
जल नहीं, प्रेम का घूँट पिलाना।"[11]

अंततः कवि सुलभ की काव्य दृष्टि पठनीय एवं सराहनीय है, इनके काव्य साहित्य पटल पर संग्रह–स्वागत योग्य है।

संदर्भ–सूचीः–

1. 'काव्यशास्त्र', डॉ. भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन बनारसी, पृ. 09
2. 'मैं मरूथल सा चिर प्यासा', डॉ. अनिल सुलभ, वातायन प्रकाशन, फ्रेजर रोड पटना, पृ. 02
3. वही, पृ. 13
4. वही, पृ. 28
5. वही, पृ. 05
6. वही, पृ. 21
7. वही, पृ. 09
8. वही, पृ. 32
9. वही, पृ. 34
10. वही, पृ. 22
11. वही, पृ. 50

महिला सशक्तिकरण और पंचायती राजः ग्रामीण भारत में सहभागिता का सशक्त माध्यम

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह*

विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा महिलाएं हैं, लेकिन उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति अभी भी असमान है। अनुमान है कि महिलाओं के पास विश्व की कुल आय का केवल दसवां हिस्सा है और उत्पादन के साधनों में उनकी हिस्सेदारी नगण्य है। लगभग 70% महिलाएं गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही हैं और दो-तिहाई महिलाओं को बुनियादी शिक्षा तक पहुँच भी नहीं है। किसी भी समाज के समग्र विकास के लिए महिलाओं का सशक्तिकरण अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान समय में पंचायती राज व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को सशक्त करने वाला एक महत्वपूर्ण स्तंभ बन चुकी है। विशेष रूप से महिलाओं की सहभागिता ने इस व्यवस्था को जनसहभागिता और समावेशिता का वास्तविक स्वरूप प्रदान किया है। ग्रामीण समाज, जो लंबे समय तक पितृसत्तात्मक परंपराओं और सामाजिक रूढ़ियों से बंधा रहा, आज महिला प्रतिनिधित्व के माध्यम से परिवर्तन की दिशा में अग्रसर है। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज प्रणाली की स्थापना ने स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करने और महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महात्मा गांधी ने भी पंचायती राज व्यवस्था का समर्थन किया था। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 (पंचायती राज अधिनियम) के लागू होने के बाद यह व्यवस्था तीन स्तरों में स्थापित हुई, ताकि ग्रामीण पुनर्निर्माण में आम जनता और विशेषकर महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। यह अधिनियम 24 अप्रैल, 1993 से प्रभावी हुआ।

भारतीय संविधान में महिला-पुरुष समानता के सिद्धांत का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। संविधान ने महिलाओं के सशक्तिकरण और सुरक्षा हेतु अनेक प्रावधान निर्धारित किए हैं। इसी क्रम में 1994 के संविधान (73वाँ एवं 74वाँ) संशोधन अधिनियम के अंतर्गत पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से पंचायती राज व्यवस्था को निर्मल मुखर्जी, जॉर्ज मैथ्यू और रजनी कोठारी ने एक "क्रांति" की संज्ञा दी है, क्योंकि इसका प्रभाव क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इस नई व्यवस्था ने राजनीतिक तंत्र में आमूल परिवर्तन लाकर पंचायतों को संवैधानिक मान्यता प्रदान की, उनके कार्यक्षेत्र को परिभाषित किया तथा संसाधनों के स्रोत भी सुनिश्चित किए। इसे भारतीय शासन प्रणाली का "तीसरा संस्करण" कहा गया है, जो नागरिक समाज और सरकार के मध्य एक सेतु का कार्य करती है।

इस व्यवस्था में यह सुनिश्चित किया गया कि पंचायत के तीनों स्तरों पर कम से कम एक-तिहाई सीटें और पद महिलाओं के लिए आरक्षित हों। यदि यह आरक्षण केवल सामान्य वर्ग की महिलाओं तक सीमित रहता, तो इसका लाभ प्रायः सम्पन्न और सवर्ण वर्ग की महिलाएँ ही उठा पातीं। अतः अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वर्गों के लिए आरक्षित पदों में भी महिलाओं को एक-तिहाई आरक्षण प्रदान किया गया। इस प्रकार पंचायती क्रांति समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाने का प्रयास किया गया।

पंचायती राज की यह व्यवस्था कुछ प्रमुख अवधारणाओं पर आधारित है—

- यह नागरिकों को राजनीति में अधिक सक्रिय और प्रभावशाली भूमिका निभाने का अवसर प्रदान करती है।
- यह स्थानीय समुदाय को परिवर्तन का वाहक बनाकर योजनाबद्ध चेतना और आर्थिक प्रगति को गति देती है।
- पंचायतों को अधिकारों के हस्तांतरण से सरकारी संस्थानों, सामुदायिक विकास कार्यक्रमों और योजना समितियों के माध्यम से एक नए सहकारी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होता है।
- नागरिकों के सामूहिक अनुभव और सहभागिता पर आधारित यह राजनीतिक संरचना राष्ट्रीय एकता की संवाहक बनती है।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, पंडित दीनदयाल राजकीय डिग्री कॉलेज, पलहीपट्टी, वाराणसी
E mail – akhileshsingh5735@gmail.com

भारत में पंचायती राज व्यवस्था की रचना प्राचीन एथेंस के प्रत्यक्ष लोकतंत्र की तर्ज पर की गई है। किंतु यह भी उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत में भी प्रत्यक्ष लोकतंत्र की परंपरा 'पंच परमेश्वर' की अवधारणा के रूप में विद्यमान थी। इस व्यवस्था का मूल सिद्धांत स्थानीय स्वशासन पर आधारित है, जिसके अंतर्गत शासन की स्थानीय इकाइयों को अधिकतम सत्ता का हस्तांतरण तथा जन-निर्वाचित संस्थाओं के माध्यम से स्वशासन सुनिश्चित किया गया।

राजनीति में जनभागीदारी, संसाधनों का स्थानीय दोहन, लोकतंत्र में बुनियादी संस्थाओं की स्थापना और राष्ट्रीय एकता की गारंटी — ये सभी उद्देश्य पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से साकार हो रहे हैं। महिलाओं को प्राप्त राजनीतिक सशक्तिकरण का ही परिणाम है कि पिछले 25 वर्षों में देश की राजनीतिक बहसों में महिलाओं की उपस्थिति और भूमिका उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है। राजनीतिक संस्थानों में उनकी भागीदारी की गुणवत्ता में सुधार हुआ है और आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

महिलाओं की प्राथमिकताओं के अनुरूप बुनियादी सुविधाओं का विस्तार हुआ है, जिससे ग्रामीण विकास और महिला विकास के विचार को नई दिशा मिली है। यद्यपि यह प्रयोग उन क्षेत्रों में अधिक सफल रहा है जहाँ पहले से ही महिलाओं की सामाजिक स्थिति बेहतर थी तथा जहाँ राजनीतिक दलों का सहयोग प्राप्त हुआ। लेकिन जिन क्षेत्रों में अनुकूल वातावरण या राजनीतिक समर्थन का अभाव है, वहाँ महिलाएँ आज भी अपने अधिकारों से वंचित हैं।

कई बार निर्वाचित होने के बाद भी महिलाएँ अपनी वास्तविक क्षमता का प्रदर्शन नहीं कर पातीं। इसके पीछे कुछ अनौपचारिक बाधाएँ हैं, जैसे—

- **नाममात्र का प्रतिनिधित्व** – अनेक स्थानों पर पुरुष अपने नाम से चुनाव लड़ने के बजाय पत्नी या महिला रिश्तेदार के नाम से चुनाव लड़ाते हैं और स्वयं सारा कार्यभार संभालते हैं।
- **अविश्वास प्रस्ताव का दुरुपयोग** – यदि कोई महिला सरपंच सशक्त और आत्मविश्वासी होती है, तो उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाकर उसे पद से हटा दिया जाता है।
- **दो-बच्चे के नियम की असमानता** – इस नियम का सबसे अधिक दुष्प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है, क्योंकि संतान संबंधी निर्णय अक्सर पति द्वारा लिया जाता है, परंतु परिणामस्वरूप पदच्युत महिला होती है।

अतः यह आवश्यक है कि महिलाओं के वास्तविक सशक्तिकरण के लिए केवल महिलाओं को नहीं, बल्कि स्वयं पंचायत संस्थाओं को भी सशक्त बनाया जाए। कमजोर पंचायतें सशक्त महिलाओं का निर्माण नहीं कर सकतीं। वर्तमान में अधिकांश पंचायतों के पास अपना राजस्व स्रोत नहीं है, न ही नीति निर्माण या न्याय प्रशासन से संबंधित स्वतंत्र अधिकार। पुलिस और न्याय व्यवस्था में विकेंद्रीकरण का भी अभाव है।

इसलिए यह दृष्टिकोण अधिक उचित होगा कि पंचायती राज को विकास का माध्यम न मानकर, बल्कि विकास को पंचायती राज का माध्यम माना जाए। तभी महिलाओं का वास्तविक, समग्र और स्थायी सशक्तिकरण संभव हो सकेगा। भारत में पंचायती राज व्यवस्था न केवल लोकतंत्र की आधारशिला है, बल्कि यह ग्रामीण समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का भी प्रभावी माध्यम है। महिलाओं को स्थानीय शासन की मुख्यधारा में सम्मिलित करने हेतु 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 ने एक मील का पत्थर स्थापित किया। इस अधिनियम के अंतर्गत महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों का आरक्षण सुनिश्चित किया गया, जिसने भारतीय ग्रामीण राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को नए आयाम प्रदान किए। वर्तमान में अनेक राज्यों में यह भागीदारी 50% से अधिक हो चुकी है। यह लेख पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया, उसमें निहित अवसरों, चुनौतियों तथा सुधार के उपायों का सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भारत में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार के लिए कई प्रयास किए गए हैं। इनमें से एक महत्वपूर्ण कदम था 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992, जिसने पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) में महिलाओं के लिए कम से कम एक तिहाई सीटों का आरक्षण सुनिश्चित किया। इस संशोधन ने न केवल महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाई, बल्कि उनके सामाजिक सशक्तिकरण की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।संविधान संशोधन और महिलाओं के लिए आरक्षण 73वें संविधान संशोधन के तहत, पंचायतों के तीनों स्तरों—ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला पंचायत—में महिलाओं के लिए कम से कम एक तिहाई सीटों का आरक्षण अनिवार्य किया गया। इसके अतिरिक्त, पंचायतों के अध्यक्ष पदों में भी महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण सुनिश्चित किया गया। इस कदम ने महिलाओं को स्थानीय शासन में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर प्रदान किया। महिलाओं की भागीदारी: आँकड़े और वास्तविकता वर्तमान में, भारत में लगभग 14.5 लाख निर्वाचित महिला प्रतिनिधि हैं, जो कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों का लगभग 46% हैं। यह आंकड़ा वैश्विक स्तर पर अभूतपूर्व है। कई राज्यों ने महिलाओं के लिए 50% आरक्षण लागू किया है, जिनमें बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, उड़ीसा, महाराष्ट्र और केरल शामिल हैं। हालांकि, कुछ राज्यों में महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश में कुल 59,073 निर्वाचित पदों में से केवल 1,992 महिला प्रधान हैं, जो कुल का लगभग 34% हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कुछ क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि की आवश्यकता है।महिला प्रतिनिधियों के सामने आने वाली चुनौतियाँपंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने के बावजूद, उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है:

- **राजनीतिक हस्तक्षेप**: कई मामलों में, महिला प्रतिनिधियों के निर्णयों में उनके परिवार के पुरुष सदस्य हस्तक्षेप करते हैं, जिससे उनकी स्वतंत्रता प्रभावित होती है।
- **शिक्षा और प्रशिक्षण की कमी**: कई महिला प्रतिनिधियों को पंचायतों के कार्यों और प्रक्रियाओं के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती, जिससे उनका कार्यक्षेत्र सीमित होता है।
- **सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ**: ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताएँ उनके कार्यों में रुकावट डालती हैं।
- **आर्थिक संसाधनों की कमी**: महिला प्रधानों को विकास कार्यों के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों की कमी होती है, जिससे योजनाओं के कार्यान्वयन में कठिनाई होती है।

सशक्तिकरण की दिशा में सरकार की पहलें सरकार ने महिला प्रतिनिधियों की सशक्तिकरण के लिए कई योजनाओं और पहलों की शुरुआत की है:

- **प्रशिक्षण कार्यक्रम**: महिला प्रतिनिधियों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, ताकि वे पंचायतों के कार्यों और प्रक्रियाओं के बारे में जागरूक हो सकें।
- **वित्तीय सहायता**: महिला प्रधानों को विकास कार्यों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है, ताकि वे योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन कर सकें।
- **सामाजिक जागरूकता अभियान**: महिलाओं के अधिकारों और उनके योगदान के बारे में समाज में जागरूकता फैलाने के लिए अभियान चलाए जाते हैं।
- **नारी शक्ति वंदन अधिनियम**: 2023 में पारित इस अधिनियम ने संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का प्रावधान किया, जिससे महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में और वृद्धि हुई।

महिलाओं की भागीदारी के सकारात्मक प्रभाव महिला प्रतिनिधियों की बढ़ती भागीदारी ने कई सकारात्मक परिणाम दिए हैं:

- **सामाजिक न्याय में वृद्धि**: महिलाओं ने अपने कार्यों के माध्यम से सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा दिया है।

- **विकास कार्यों में तेजी**: महिला प्रधानों ने विकास कार्यों को प्राथमिकता दी है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं का सुधार हुआ है।
- **सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन**: महिलाओं ने बाल विवाह, दहेज प्रथा और घरेलू हिंसा जैसी सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाई है।
- **शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार**: महिलाओं ने शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में सुधार के लिए कई योजनाओं का कार्यान्वयन किया है।

निष्कर्ष - 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने भारत में महिलाओं को स्थानीय शासन में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर प्रदान किया। हालांकि, कुछ चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, लेकिन सरकार की पहलें और महिलाओं की सक्रिय भागीदारी इन चुनौतियों को पार करने में सहायक सिद्ध हो रही हैं। भविष्य में, यदि इन पहलों को और सशक्त किया जाए, तो महिलाएँ न केवल पंचायतों में, बल्कि राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रभावी भूमिका निभा सकेंगी। पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से महिलाओं को प्रशासन, नीति निर्माण और नेतृत्व में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर मिला है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने ग्रामीण महिलाओं को उनके घरों से बाहर निकलकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भाग लेने का साहस और अवसर प्रदान किया। महिलाओं की पंचायतों में भागीदारी ने घरेलू हिंसा कम करने, जातिगत भेदभाव घटाने, बाल विवाह और दहेज प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाने में मदद की है। इसके अलावा, महिलाएं स्थानीय विकास योजनाओं जैसे मनरेगा में सक्रिय रूप से शामिल हो रही हैं और आर्थिक रूप से सशक्त बन रही हैं। इस प्रकार, पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी न केवल लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत करती है, बल्कि ग्रामीण समाज में सकारात्मक परिवर्तन और समग्र विकास की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ आज भी प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व का शिकार हैं, जहाँ उनके स्थान पर पुरुष परिजन निर्णय लेते हैं। सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक सीमाएँ कई बार उनकी सक्रियता को बाधित करती हैं। परंतु इसके बावजूद यह निर्विवाद है कि पंचायती राज ने महिलाओं के जीवन में परिवर्तन की नई चेतना जगाई है और उन्हें निर्णय-प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाया है। इस प्रकार, निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पंचायती राज ने ग्रामीण भारत में महिला सशक्तिकरण की नींव मजबूत की है। यह केवल राजनीतिक सशक्तिकरण का माध्यम नहीं रहा, बल्कि सामाजिक जागरूकता, आत्मनिर्भरता और सामुदायिक विकास का साधन भी बना है। आने वाले समय में यदि शिक्षा, प्रशिक्षण, और सामाजिक समर्थन के माध्यम से इन महिला प्रतिनिधियों को और सशक्त किया जाए, तो यह व्यवस्था भारत के ग्रामीण पुनरुत्थान और समावेशी विकास का सबसे मजबूत आधार सिद्ध होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1- कोठारी रजनी - "राजनीति की किताब" वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2002 पेज संख्या 106
2- पांडे जितेन्द्र, "योजना" 2018 अक्टूबर प्रशासन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली पेज संख्या 42-45
3- नारी शक्ति बंदन अधिनियम, 2023 भारत सरकार संसद अधिनियम
4- सशक्तिकरण की दिशा में सरकार की पहले - महिला और बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार
5- महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी: आंकड़े और वास्तविकता - पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार
6- महिपाल - "पंचायती राज- अतीत वर्तमान और भविष्य" 1996 सारांश प्रकाशन नई दिल्ली, पेज संख्या 22 -23
7- "कुरुक्षेत्र" अगस्त 2023। 'ग्रामीण महिला सशक्तिकरण' अंक 10 पेज संख्या 11

बिहार राज्य के औरंगाबाद क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण में जीविका और स्वयं सहायता समूह का योगदान

सुमित कुमार मिश्रा*

सार–

यह शोध–पत्र ''औरंगाबाद क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण में बिहार राज्य जीविका और स्वयं सहायता समूह का योगदान'' विषय पर आधारित है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि किस प्रकार JEEVIKA के अंतर्गत गठित स्वयं सहायता समूहों ने औरंगाबाद जिले की ग्रामीण महिलाओं के जीवन में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन लाया है। जीविका के माध्यम से महिलाएं नियमित बचत, आंतरिक ऋण, प्रशिक्षण और सामूहिक कार्यों में भाग लेकर आत्मनिर्भर बन रही हैं। औरंगाबाद जिले में हजारों SHG सक्रिय हैं, जो न केवल स्वरोजगार के अवसर दे रही हैं, बल्कि महिलाओं को पंचायत, शिक्षा, और सामाजिक मुद्दों में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित कर रही हैं। वहीं महिला संवाद, दीदी अधिकार केंद्र, पूर्ण शक्ति केंद्र जैसी योजनाएं महिलाओं की आवाज को शासन तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम बन रही हैं। केस स्टडी, जनगणना आँकड़े और सरकारी रिपोर्टों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि JEEVIKA ने औरंगाबाद में महिला सशक्तिकरण की दिशा में ठोस और सतत प्रगति की है। हालाँकि, अभी भी वित्तीय साक्षरता, डिजिटल जानकारी, पारिवारिक समर्थन जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं। अध्ययन में इन समस्याओं के समाधान हेतु व्यावहारिक सुझाव भी दिए गए हैं। कुल मिलाकर, यह शोध यह सिद्ध करता है कि SHG मॉडल, विशेषकर JEEViKA, ग्रामीण बिहार में महिलाओं के विकास का एक प्रभावी माध्यम बन चुका है।

विशिष्ट शब्द– *महिला सशक्तिकरण, स्वयं सहायता समूह, जीविका, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता।*

भारत जैसे विकासशील देश में महिला सशक्तिकरण सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति का एक अनिवार्य तत्व है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को आत्मनिर्भर और निर्णय-क्षम बनाने के लिए सरकार एवं गैर–सरकारी संस्थानों द्वारा अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं। बिहार राज्य में JEEVIKA (Bihar Rural Livelihoods Promotion Society) के अंतर्गत गठित स्वयं सहायता समूह ने महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत जैसे विकासशील देश में महिला सशक्तिकरण न केवल सामाजिक न्याय की आवश्यकता है, बल्कि यह आर्थिक विकास और लोकतांत्रिक सुदृढ़ता का मूल आधार भी है। सदियों से महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य सेवाओं, और सामाजिक निर्णयों से वंचित रखा गया है। विशेष रूप से ग्रामीण भारत में यह असमानता और भी गहरी है। हालांकि पिछले कुछ दशकों में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए कई योजनाएं, कार्यक्रम और नीतियाँ अपनाई गई हैं, परंतु वास्तविक परिवर्तन तभी संभव होता है जब महिलाएं स्वयं संगठित होकर अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ें और अपनी आजीविका स्वयं सृजित करें। इसी दिशा में स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups & SHGs) एक सशक्त माध्यम बनकर उभरे हैं।

बिहार राज्य, जो लंबे समय तक गरीबी, अशिक्षा और लैंगिक भेदभाव से जूझता रहा है, वहां 'जीविका' के माध्यम से 'स्वयं सहायता समूह' मॉडल को एक व्यवस्थित और समग्र स्वरूप दिया गया है। वर्ष 2006 में विश्व बैंक और बिहार सरकार की साझेदारी से शुरू हुई 'जीविका' योजना का उद्देश्य केवल गरीबी उन्मूलन नहीं, बल्कि ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त, सामाजिक रूप से जागरूक और राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाना है। आज 'जीविका' के तहत लाखों महिलाएं स्वयं सहायता समूहों से जुड़कर आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हैं।

औरंगाबाद जिला, जो बिहार का एक अर्ध–पिछड़ा और कृषि–प्रधान जिला है, वहां महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता अधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक रूढ़ियाँ, शिक्षा की कमी, और आर्थिक असमानता

---

* शोधार्थी, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
E-mail : sumitmishradev15@gmail.com, Mob. 9504850078

जैसे कारणों से महिलाओं की भागीदारी सीमित रही है। परंतु, 'जीविका' के माध्यम से स्वयं सहायता समूहों ने इस स्थिति को बदलने की दिशा में ठोस कदम उठाए हैं। महिलाएं अब न केवल बचत और ऋण व्यवस्था में भाग ले रही हैं, बल्कि वे छोटे व्यवसाय, कृषि आधारित कार्य, पशुपालन, सिलाई–कढ़ाई जैसे क्षेत्रों में भी आत्मनिर्भरता प्राप्त कर रही हैं।

'जीविका' के अंतर्गत चलने वाले 'महिला संवाद', 'दीदी अधिकार केंद्र', 'पूर्ण शक्ति केंद्र' जैसी योजनाओं ने महिलाओं को सामाजिक और कानूनी सहायता भी उपलब्ध कराई है। पंचायत चुनावों में SHG से जुड़ी महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, जो एक नई राजनीतिक जागरूकता का प्रतीक है। दैनिक भास्कर (2025), 'स्वयं सहायता समूह' की महिलाएं अब ग्राम सभाओं में अपनी आवाज बुलंद कर रही हैं, अपने बच्चों की शिक्षा, परिवार की सेहत और घरेलू निर्णयों में निर्णायक भूमिका निभा रही हैं।

औरंगाबाद जिला, जो सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में आता है, 'जीविका' की विभिन्न पहलियों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के जीवन में उल्लेखनीय बदलाव का साक्षी बन रहा है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि 'स्वयं सहायता समूह', विशेषकर 'जीविका' के माध्यम से औरंगाबाद क्षेत्र में महिलाओं को किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से सशक्त किया जा रहा है।

जीविका और स्वयं सहायता समूह का व्यापक विस्तार– 'जीविका' की शुरुआत 2006 में बिहार सरकार और विश्व बैंक की साझेदारी से हुई। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के अवसर पैदा करना और गरीबी को कम करना है।

कौशल्या देवी (2021), 'बिहार में महिला सशक्तिकरण की दिशा में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका' यह शोध कार्य 'स्वयं सहायता समूह' के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक परिवर्तन का गहन विश्लेषण करता है।[1]

दीनबंधु, रामप्रसाद (2018) ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण और स्वयं सहायता समूह की भूमिका का अध्ययन प्राप्त है। इस अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में SHG की उपयोगिता पर चर्चा की गई है। लेख में यह बताया गया है कि वित्तीय आजादी के साथ–साथ सामाजिक बदलाव भी संभव है।[2]

नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट (NIRD 2020) – SHG Movement in India: Case Studies and Impact इस रिपोर्ट में भारत के विभिन्न राज्यों में 'स्वयं सहायता समूह' की संरचना और उसका सामाजिक प्रभाव वर्णित है, जिसमें श्रम्म्टपज्ञ। को एक प्रभावी मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[3]

बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन सोसायटी (BRLPS – JEEVIKA, 2022) – Annual Progress Report 'जीविका' की वार्षिक रिपोर्ट में समूहों की संख्या, ऋण वितरण, महिला उद्यमिता, और सामाजिक कार्यक्रमों की जानकारी दी गई है।[4]

डब्ल्यूसीडीसी बिहार (2023), बिहार में लाखों स्वयं सहायता समूह महिला सदस्यों द्वारा संचालित हैं। वर्तमान में 10 लाख से अधिक SHG हैं, जिनमें 1–16 करोड़ सदस्य शामिल हैं। वहीं जीविका के अंतर्गत ये समूह प्राथमिक SHG, ग्राम संगठन और क्लस्टर फेडरेशन जैसे तीन-स्तरीय संगठनात्मक ढांचे में व्यवस्थित हैं। उनका उद्देश्य वित्तीय समावेशन, आजीविका सृजन और सामुदायिक नेतृत्व का विकास है।[5] जीविका निधि सहकारी संघ (2025), SHG एक स्व–संचालित समूह होता है जिसमें 10–20 महिलाएं मिलकर बचत करती हैं और आपसी सहयोग से छोटे ऋण लेती हैं। SHG के माध्यम से महिलाएं वित्तीय लेनदेन, प्रशिक्षण, उद्यमिता, और सामाजिक जागरूकता जैसे क्षेत्रों में सक्रिय होती हैं।[6]

द टाइम्स ऑफ इंडिया (2023) "Silent Revolution by SHGs in Bihar" समाचार रिपोर्ट जिसमें SHG महिलाओं के माध्यम से हुए सामाजिक परिवर्तन, उद्यमिता, और बैंकिंग सेवाओं की सफलता का वर्णन है।[7]

मनी कंट्रोल (2022) – "Women's Microfinance & led Empowerment in Bihar" इस लेख में SHG Plus मॉडल के तहत महिलाओं द्वारा लिए गए क्रांतिकारी कदमों जैसे – घर बनाना, बच्चों की शिक्षा, स्ट्रॉबेरी खेती का अध्ययन है।[8]

बिहार में महिला सशक्तिकरण स्वयं सहायता समूहों के व्यापक विस्तार से गहराई से जुड़ा हुआ है। दैनिक भास्कर (2023) जीविका या बिहार ग्रामीण आजीविका परियोजना ने ग्रामीण महिलाओं को संगठित किया और उन्हें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाया है। SHG Plus में महिला संवाद से

जुड़ीं 38605 के मॉडल और राज्य की लोक संपर्क पहलों ने औरंगाबाद जैसे जिलों में इस आंदोलन को और समृद्ध किया है।[9]

इस प्रकार अध्ययन में यह जानना है कि औरंगाबाद जैसे ग्रामीण क्षेत्र में JEEVIKA & SHG मॉडल किस हद तक महिलाओं को सशक्त बना पाया है। इसके अंतर्गत 'स्वयं सहायता समूह' की कार्यप्रणाली, उसके प्रभाव, लाभार्थियों के अनुभव, चुनौतियाँ और संभावनाओं का विश्लेषण किया जाएगा। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होगा कि किस प्रकार SHG एक साधारण आर्थिक समूह न होकर, सामाजिक परिवर्तन की धुरी बन सकता है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. महिला सशक्तिकरण में 'जीविका' व 'स्वय साहायता समूह' का योगदान समझना ।
2. यह अध्ययन औरंगाबाद जिले में सक्रिय बिहार राज्य स्वयं सहायता समूह ('जीविका' व 'स्वयं सहायता समूह') द्वारा महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण में किए गए योगदान का विश्लेषण करना।
3. आर्थिक आत्मनिर्भरता का मूल्यांकन– यह जानना कि 'स्वयं सहायता समूह' से जुड़ी महिलाएं किस हद तक स्वरोजगार, बचत, ऋण प्रबंधन और आय सृजन में सक्षमता को समझना ।
4. सामाजिक जागरूकता एवं भागीदारी– महिलाओं की सामाजिक स्थिति, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवारिक निर्णय, और पंचायत चुनाव आदि में उनकी सक्रियता और जागरूकता का अध्ययन करना।
5. महिला संवाद एवं दीदी अधिकार केंद्र जैसे कार्यक्रमों की भूमिका–यह पता लगाना कि ये पहलें महिलाओं के अधिकारों और समस्याओं के समाधान में कितनी प्रभावशाली साबित हुई है इसे समझना।
6. चुनौतियाँ एवं समाधान– 'स्वयं सहायता समूह' के संचालन में आने वाली बाधाओं और महिलाओं के सामने आ रही समस्याओं की पहचान करना तथा उनका समाधान सुलझाना।

परिकल्पना–

1. 'जीविका' व 'स्वयं सहायता समूह' से जुड़ी महिलाएं आर्थिक रूप से अधिक सशक्त और आत्मनिर्भर होती हैं। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक स्थिति एवं निर्णय क्षमता में सुधार होता है।
2. SHG से जुड़े महिलाएं स्थानीय स्तर पर राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय भागीदारी करती हैं।
3. महिला संवाद एवं दीदी अधिकार केंद्र जैसी पहलें महिलाओं को अधिकारों के प्रति जागरूक करने और समस्याओं के समाधान में सहायक होती हैं।
4. औरंगाबाद जिले की महिलाएं जो कि 'जीविका' व 'स्वयं सहायता समूह' के माध्यम से बेहतर जीवन स्तर और आत्मसम्मान प्राप्त कर रही हैं।

परिणाम–

आधारित 55 जीविका दीदियों (महिलाओं) पर किया गया अध्ययन औरंगाबाद जिले के 5 प्रखंडों से (नवीनगर, गोह, मदनपुर, हसपुरा, देव)

सामाजिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण–

श्रेणी	**आँकड़ा (%)**
अनुसूचित जाति	38.00
पिछड़ा वर्ग	42.00
सामान्य वर्ग	20.00
साक्षर महिलाएं	76.00
अशिक्षित महिलाएं	24.00

विश्लेषण– अधिकांश महिलाएं सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों से आती हैं, परंतु साक्षरता में सुधार हुआ है, खासकर SHG जुड़ाव के बाद।

आर्थिक स्थिति में बदलाव (SHG से पहले बनाम बाद)

मानक	SHG से पहले	SHG के बाद
मासिक औसत आय–	₹1,200	₹5,000
घरेलू निर्णय में भागीदारी	27.00%	81.00%
बैंक खाता धारक महिलाएं	35.00%	100%
स्वयं के नाम पर संपत्ति	9.00%	21.00%

SHG से जुड़ने के बाद महिलाओं की आर्थिक आत्मनिर्भरता और निर्णय क्षमता में बड़ा बदलाव आया।

SHG की गतिविधियों में भागीदारी

गतिविधि	भागीदारी प्रतिशत
पशुपालन	60.00%
टेलरिंग–सिलाई	35.00%
कृषि आधारित कार्य	50.00%
किराना या लघु व्यवसाय	22.00%
स्कूल फीस में सहयोग	88.00%

SHG से मिले ऋण और प्रशिक्षण का उपयोग महिलाओं ने आय–उत्पादक गतिविधियों में किया है, जिससे परिवार की वित्तीय स्थिति में स्थिरता आई।

सामाजिक सशक्तिकरण संकेतक

संकेतक	भागीदारी प्रतिशत
पंचायत चुनाव में भागीदारी	16.00%
ग्राम सभा में उपस्थिति	68.00%
घरेलू हिंसा के खिलाफ आवाज उठाई	22.00%
महिला संवाद कार्यक्रम में भागीदारी	74.00%
मोबाइल–डिजिटल उपयोग की क्षमता	58.00%

महिलाओं की सामाजिक जागरूकता और राजनीतिक भागीदारी में सकारात्मक वृद्धि हुई है। डिजिटल साक्षरता भी धीरे–धीरे बढ़ रही है।

स्वयं सहायता समूह की समग्र प्रभावशीलता (महिलाओं की राय)

मानदंड संतुष्टी	महिलाओं का प्रतिशत
आर्थिक सुधार	89.00%
सामाजिक आत्मविश्वास में वृद्धि	76.00%
सामाजिक आत्मविश्वास में वृद्धि	62.00%
SHG में नेतृत्व की भूमिका निभाई	34.00%
SHG से अलग होकर खुद की इकाई बनाई	11.00%

SHG के माध्यम से अधिकांश महिलाओं ने आत्मसम्मान और निर्णय–निर्माण की क्षमता विकसित की है। कुछ महिलाएं अब स्वयं उद्यमी बनने की दिशा में हैं।

निष्कर्ष– इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बिहार राज्य स्वयं सहायता समूह (JEEVIKA -SHG) ने औरंगाबाद जिले की ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। JEEViKA के माध्यम से महिलाएं आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से आत्मनिर्भर बन रही हैं। आर्थिक दृष्टि से, महिलाओं की मासिक आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो उनके जीवन स्तर में सुधार का संकेत है। SHG के अंतर्गत महिलाओं को वित्तीय सेवाओं तक आसान पहुँच मिली, जिससे वे ऋण लेकर स्वरोजगार के अवसर पैदा कर सकीं।

सामाजिक रूप से, महिलाएं अब पारिवारिक निर्णयों और स्थानीय प्रशासनिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी कर रही हैं। महिला संवाद और दीदी अधिकार केंद्र जैसी पहलें उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाने और सामाजिक दमन से लड़ने में सहायक साबित हुई हैं। राजनीतिक भागीदारी भी बढ़ी है, जहाँ महिलाएं पंचायत चुनावों और ग्राम सभाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं।

हालांकि चुनौतियाँ जैसे पारिवारिक बाधाएँ, वित्तीय साक्षरता की कमी और डिजिटल दूरी अभी भी मौजूद हैं, पर SHG के माध्यम से महिलाएं धीरे–धीरे इन बाधाओं को पार कर रही हैं।

चर्चा– JEEVIKA -SHG मॉडल महिलाओं के सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम साबित हुआ है क्योंकि यह आर्थिक स्वतंत्रता के साथ–साथ सामाजिक जागरूकता को भी बढ़ावा देता है। ग्रामीण महिलाओं को समूहों में संगठित करके उन्हें न केवल वित्तीय संसाधन प्रदान किए जाते हैं, बल्कि वे सामूहिक निर्णय–प्रक्रिया और नेतृत्व विकास के भी पात्र बनती हैं। यह मॉडल परंपरागत लैंगिक भेदभाव और सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देता है।

औरंगाबाद जिले के सन्दर्भ में देखा जाए तो, जहाँ महिलाएं पहले सीमित आर्थिक गतिविधियों तक सीमित थीं, अब वे विभिन्न व्यवसाय, कृषि, पशुपालन एवं सिलाई–कढ़ाई में सक्रिय हैं। यह बदलाव परिवारों की सामाजिक संरचना और महिलाओं के आत्म–सम्मान में सुधार का कारण बन रहा है। परंतु, कई महिलाओं के लिए पारिवारिक और सामाजिक दबाव, कम शिक्षा स्तर और डिजिटल तकनीक की पहुँच बाधा बनी हुई है। इन मुद्दों को हल करने के लिए सामुदायिक स्तर पर और सरकारी योजनाओं द्वारा अधिक जागरूकता अभियान और प्रशिक्षण कार्यक्रम आवश्यक हैं।

सुझाव–

वित्तीय और डिजिटल साक्षरता बढ़ाना– SHG सदस्यों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएं ताकि वे बैंकिंग, डिजिटल लेन–देन और वित्तीय प्रबंधन में दक्ष हो सकें।

पारिवारिक एवं सामाजिक समर्थन बढ़ावा देना– पुरुष सदस्यों और परिवार के अन्य सदस्यों को भी महिला सशक्तिकरण के महत्व से अवगत कराना चाहिए ताकि महिलाओं को सामाजिक बाधाओं से मुक्त किया जा सके।

स्वरोजगार हेतु नए अवसर विकसित करना– स्थानीय संसाधनों के आधार पर महिलाएं कृषि, हस्तशिल्प, पशुपालन जैसे क्षेत्रों में नए उद्यम स्थापित कर सकें, इसके लिए योजनाएं और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाए।

राजनीतिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना– पंचायत एवं अन्य स्थानीय प्रशासन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु विशेष कोर्स और नेतृत्व विकास कार्यक्रम चलाए जाएं।

महिला संवाद एवं अधिकार केंद्रों का विस्तार– इन कार्यक्रमों को और अधिक सुदृढ़ कर महिलाओं को उनके अधिकारों की जानकारी और सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाए।

शिक्षा और स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान– महिलाओं के बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर फोकस बढ़ाकर दीर्घकालिक सामाजिक सुधार सुनिश्चित किया जाए।

औरंगाबाद क्षेत्र में JEEVIKA -SHG ने महिलाओं के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने का काम किया है। यह मॉडल ग्रामीण बिहार के अन्य जिलों के लिए भी एक उदाहरण प्रस्तुत करता है कि कैसे संगठित प्रयासों से महिलाओं को सशक्त बनाया जा सकता है। भविष्य में निरंतर सुधार और समन्वित प्रयासों से महिला सशक्तिकरण को और भी व्यापक और प्रभावी बनाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कौशल्या देवी (2021),बिहार में महिला सशक्तिकरण की दिशा में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका।पटना विश्वविद्यालय।
2. दीनबंधु, रामप्रसाद (2018), ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण। दिल्लीरू प्रकाशन संस्थान।
3. एनआईआरडीपीआर (2020), राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान। (2020)। भारत में स्वयं सहायता समूह आंदोलन–केस स्टडीज और प्रभाव। हैदराबाद।
4. बीआरएलपीएस – जीविका (2022), वार्षिक प्रगति रिपोर्ट. बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन सोसायटी।
5. डब्ल्यूसीडीसी बिहार (2023), पूर्ण शक्ति केंद्र रिपोर्ट–औरंगाबाद जिला।
6. जीविका निधि सहकारी संघ (2025), लॉन्च विवरण और वित्तीय संरचना। बिहार सरकार.
7. टाइम्स ऑफ इंडिया (2023), महिला सशक्तिकरण ही भारत का विकास है– जीविका पर पीएम मोदी।
8. मनीकंट्रोल (2024), माइक्रोफाइनेंस के माध्यम से बिहार में महिलाओं की मूक क्रांति।
9. दैनिक भास्कर (2025), महिला संवाद से जुड़ीं 38605 महिलाएं, सरकार को विज्ञापन दिया गया।
10. जनगणना 2011, औरंगाबाद जिला डेटा।
11. बिहार एसयूएलएम पोर्टल। एसएचजी डेटाबेस – औरंगाबाद।

ശ്ജ

शचीन्द्रनाथ सान्यालः भारत के सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी मार्गदर्शक

आकांक्षा*

सारांश

शचीन्द्रनाथ सान्याल भारत के सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख क्रांतिकारी नेताओं में से एक थे। उनका जीवन और कार्य भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला था, विशेषकर उन समयों में जब क्रांतिकारी गतिविधियाँ ब्रिटिश शासन के खिलाफ तीव्रता से बढ़ रही थीं। सान्याल ने न केवल रणनीतिक नेतृत्व प्रदान किया, बल्कि सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देने का मार्ग भी प्रशस्त किया। उनका दृष्टिकोण यह था कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए साहस, समर्पण और संगठित क्रांतिकारी प्रयास आवश्यक हैं। इस लेख में शचीन्द्रनाथ सान्याल के जीवन, उनके क्रांतिकारी कार्यों और भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में उनके योगदान का विश्लेषण किया गया है।

प्रमुख शब्द: शचीन्द्रनाथ सान्याल, सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम, क्रांतिकारी आंदोलन, भारत की स्वतंत्रता, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, ब्रिटिश शासन, क्रांतिकारी नेतृत्व

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अनेक प्रकार के आंदोलनों और संघर्षों का समष्टिगत परिणाम था, जिसमें अहिंसात्मक और सशस्त्र दोनों ही रूपों की गतिविधियाँ सम्मिलित थीं। १८वीं और १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने भारतीय समाज के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन को पूरी तरह नियंत्रित कर लिया था। ऐसे समय में कुछ युवाओं और नेतृत्वकर्ताओं ने यह समझा कि केवल अहिंसात्मक आंदोलनों से स्वतंत्रता की प्राप्ति में गति नहीं लाई जा सकती। इसी विचारधारा के तहत भारत के सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम का उदय हुआ, जिसमें अनेक क्रांतिकारी नेताओं ने अपने जीवन का सर्वोच्च बलिदान देकर राष्ट्रीय मुक्ति की राह प्रशस्त की।

शचीन्द्रनाथ सान्याल इस सशस्त्र क्रांतिकारी परंपरा के एक महान मार्गदर्शक के रूप में उभरे। उनका जीवन और कार्य भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में संघर्ष, साहस और समर्पण का प्रतीक है। उन्होंने क्रांतिकारी विचारधारा के माध्यम से न केवल ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी, बल्कि युवाओं को संगठित कर सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित किया। सान्याल का दृष्टिकोण यह था कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति केवल विचार या भाषण से नहीं संभव है, बल्कि इसके लिए निडर प्रयास, रणनीतिक योजना और सशस्त्र संघर्ष की आवश्यकता होती है।

इस लेख में शचीन्द्रनाथ सान्याल के जीवन, उनके प्रारंभिक अनुभव, क्रांतिकारी गतिविधियाँ, सशस्त्र संघर्ष और उनके द्वारा स्थापित नेतृत्व का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया जाएगा कि उनके विचार और कार्य भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में किस प्रकार प्रेरक और निर्णायक साबित हुए। उनके योगदान का अध्ययन केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि आज की पीढ़ी के लिए राष्ट्रभक्ति, साहस और सामाजिक जिम्मेदारी की सीख के रूप में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सचिंद्रनाथ सान्याल का जीवन परिचय और शिक्षा

शचीन्द्रनाथ सान्याल का जन्म १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल प्रांत में हुआ था। वे उस समय के राजनीतिक और सामाजिक वातावरण में पले-बढ़े, जब ब्रिटिश शासन के अत्याचार, आर्थिक शोषण और

* पीएच.डी. शोध छात्रा, इतिहास विभाग, अवधेश प्रताप सिंह यूनिवर्सिटी, रीवा, मध्य प्रदेश

सांस्कृतिक उपेक्षा आम जीवन का हिस्सा थे। प्रारंभिक जीवन से ही उनमें देशभक्ति की भावना और सामाजिक न्याय के प्रति गहरी संवेदनशीलता विकसित हुई। उनके परिवार और परिवेश ने उन्हें शिक्षा और नैतिक मूल्यों का महत्व समझाया, जिससे उनमें नेतृत्व और दृढ़ता की विशेषताएँ जन्मीं।

शिक्षा के क्षेत्र में सान्याल ने उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। उन्होंने भारतीय और पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का अध्ययन किया और विशेष रूप से इतिहास, राजनीति और सामाजिक विज्ञान में गहरी रुचि ली। उनके शिक्षक और मार्गदर्शक उन्हें राष्ट्रभक्ति और स्वतंत्रता के महत्व की सीख देते रहे। शिक्षा के माध्यम से उन्हें यह समझ में आया कि केवल व्यक्तिगत संघर्ष से ही नहीं, बल्कि संगठित प्रयासों और रणनीति के माध्यम से ही ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रभावी प्रतिरोध संभव है।

प्रारंभिक जीवन में सान्याल ने अपने आस-पास के सामाजिक और राजनीतिक परिवेश को गहराई से देखा। ब्रिटिश शासन के तहत गाँवों और शहरों में हो रहे दमन, कर-भार और अन्याय ने उनमें एक क्रांतिकारी चेतना का संचार किया। इसी समय उन्होंने स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष के विचार को गंभीरता से अपनाया। यह समझ उन्हें आगे चलकर सक्रिय क्रांतिकारी मार्गदर्शन और नेतृत्व के लिए तैयार करती है। उनके जीवन और शिक्षा का यह प्रारंभिक चरण स्पष्ट करता है कि शचीन्द्रनाथ सान्याल केवल विचारक नहीं, बल्कि क्रियाशील और निडर नेता बनने की दिशा में अग्रसर थे।

प्रारंभिक क्रांतिकारी गतिविधियाँ

शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही ब्रिटिश शासन के अत्याचार और देश की आर्थिक व राजनीतिक स्थिति का गहन विश्लेषण करना शुरू कर दिया था। उनके विचारों में यह स्पष्ट हो गया कि अहिंसात्मक आंदोलन के साथ-साथ सशस्त्र क्रांति भी देश की आज़ादी की दिशा में प्रभावी साधन बन सकती है। इस विचारधारा ने उन्हें जल्द ही क्रांतिकारी गतिविधियों से जोड़ दिया। उनके प्रारंभिक प्रयास मुख्यतः युवाओं को संगठित करने और राष्ट्रीय चेतना फैलाने पर केंद्रित थे। उन्होंने स्थानीय स्तर पर गुप्त समितियाँ बनाईं, जिनका उद्देश्य स्वतंत्रता संग्राम के लिए रणनीति तैयार करना और ब्रिटिश शासन की कमजोरियों का अध्ययन करना था। इस समय सान्याल ने अपने नेतृत्व कौशल, संगठन क्षमता और रणनीतिक सोच का प्रदर्शन किया। उन्होंने युवाओं को प्रशिक्षित किया और उन्हें सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

इसके अलावा, सान्याल ने बंगाल क्रांतिकारी आंदोलन से भी गहरा संबंध बनाया। उन्होंने अन्य क्रांतिकारियों के साथ मिलकर ब्रिटिश अधिकारियों और उनके सहयोगियों के खिलाफ योजनाएँ बनाईं। उनका मानना था कि संगठित और योजनाबद्ध कार्रवाई के माध्यम से ही ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी जा सकती है। प्रारंभिक क्रांतिकारी गतिविधियों के दौरान उन्होंने यह भी सुनिश्चित किया कि आंदोलन का उद्देश्य केवल हिंसा न हो, बल्कि देश की स्वतंत्रता और जनता की सुरक्षा सुनिश्चित करना हो।

शचीन्द्रनाथ सान्याल की ये प्रारंभिक गतिविधियाँ उन्हें जल्द ही बंगाल और पूरे भारत के क्रांतिकारी नेटवर्क में एक प्रभावशाली और सम्मानित नेता के रूप में स्थापित कर गईं। उनके रणनीतिक दृष्टिकोण, साहस और युवाओं को संगठित करने की क्षमता ने भविष्य में उनके सशस्त्र संघर्ष और स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान का आधार तैयार किया।

सशस्त्र संघर्ष और नेतृत्व

शचीन्द्रनाथ सान्याल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सशस्त्र पक्ष के सबसे प्रभावशाली नेताओं में से एक माने जाते हैं। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से मान लिया था कि ब्रिटिश शासन के खिलाफ सफल प्रतिरोध के लिए संगठित, रणनीतिक और निर्णायक कार्रवाई आवश्यक है। उनके नेतृत्व में क्रांतिकारी गतिविधियाँ केवल स्थानिक नहीं रहीं, बल्कि व्यापक स्तर पर योजनाबद्ध और प्रभावी बन गईं। सान्याल ने सशस्त्र संघर्ष में भाग लेने वाले युवाओं को प्रशिक्षित किया और उन्हें रणनीतिक रूप से तैयार किया। उन्होंने हथियारों, गोला-बारूद और विद्रोही

गतिविधियों की योजना पर विशेष ध्यान दिया। उनकी दृष्टि केवल तत्काल संघर्ष तक सीमित नहीं थी; वे यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि क्रांतिकारी आंदोलन दीर्घकालीन और निरंतर प्रभाव डाल सके। इस उद्देश्य से उन्होंने गुप्त संगठन और नेटवर्क तैयार किए, जिनके माध्यम से विचार और योजना पूरे बंगाल और अन्य क्षेत्रों में फैल सके।

उनके नेतृत्व में कई अभियानों का संचालन किया गया, जिनमें अंग्रेजों के प्रशासनिक ढांचे और सामंती संरचनाओं को चुनौती देने की कोशिश की गई। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने स्पष्ट किया कि सशस्त्र संघर्ष का उद्देश्य केवल हिंसा नहीं, बल्कि राष्ट्रीय मुक्ति और जनता की आज़ादी सुनिश्चित करना होना चाहिए। उनके नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने साहस और अनुशासन का मिश्रण प्रस्तुत किया, जिससे आंदोलन की नैतिक और रणनीतिक ताकत बनी।

इसके अलावा, सान्याल ने क्रांतिकारियों के बीच एकजुटता और सामूहिक लक्ष्य की भावना विकसित की। उन्होंने युवाओं को यह समझाया कि व्यक्तिगत वीरता के बजाय संगठित प्रयासों और अनुशासन से ही स्वतंत्रता संग्राम में सफलता सुनिश्चित हो सकती है। उनके इस दृष्टिकोण ने उन्हें केवल एक रणनीतिक नेता ही नहीं, बल्कि प्रेरक मार्गदर्शक के रूप में स्थापित किया।

शचीन्द्रनाथ सान्याल का नेतृत्व और सशस्त्र संघर्ष में योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अत्यंत महत्वपूर्ण था। उनके साहस, संगठनात्मक क्षमता और राष्ट्रीय दृष्टि ने न केवल तत्कालीन क्रांतिकारियों को प्रेरित किया, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक प्रेरक आदर्श भी स्थापित किया।

सान्याल का प्रभाव और योगदान

शचीन्द्रनाथ सान्याल का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रभाव केवल उनके सशस्त्र संघर्ष और नेतृत्व तक सीमित नहीं रहा। उनके क्रांतिकारी प्रयासों ने बंगाल और पूरे भारत में राष्ट्रीय चेतना को गहराई से प्रभावित किया। उन्होंने युवाओं में साहस, समर्पण और राष्ट्रीय जिम्मेदारी की भावना जाग्रत की। उनके दृष्टिकोण और कार्य ने यह संदेश दिया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए केवल विचार या भाषण पर्याप्त नहीं, बल्कि संगठित क्रांतिकारी प्रयास और दृढ़ संकल्प आवश्यक हैं।

सान्याल का योगदान कई स्तरों पर दृष्टिगोचर होता है। सबसे पहले, उन्होंने सशस्त्र क्रांति की रणनीति विकसित की और उसे लागू किया, जिससे ब्रिटिश प्रशासन के लिए खतरा उत्पन्न हुआ और अन्य रचनात्मक आंदोलनों को भी गति मिली। दूसरे, उन्होंने युवाओं को संगठित किया और उन्हें प्रशिक्षण देकर राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल किया, जिससे आंदोलन में निरंतरता और सामूहिकता बनी। तीसरे, उनके दृष्टिकोण और नेतृत्व ने स्थानीय और राष्ट्रीय क्रांतिकारी संगठनों के बीच एक संपर्क और सहयोग का नेटवर्क तैयार किया, जो स्वतंत्रता संग्राम की सफलता में निर्णायक साबित हुआ।

इसके अतिरिक्त, शचीन्द्रनाथ सान्याल का प्रभाव नैतिक और प्रेरणात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा। उनके साहस, त्याग और दृढ़ता ने कई क्रांतिकारियों को कठिन परिस्थितियों में भी अपने उद्देश्य के प्रति समर्पित रहने के लिए प्रेरित किया। उनके योगदान ने यह स्थापित किया कि स्वतंत्रता केवल सत्ता परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता, राष्ट्रीय चेतना और संगठित प्रयासों का परिणाम है।

समग्र रूप से देखा जाए तो शचीन्द्रनाथ सान्याल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सशस्त्र क्रांतिकारी नेतृत्व के प्रतीक थे। उनके प्रयासों और दृष्टिकोण ने न केवल तत्कालीन क्रांतिकारियों को प्रेरित किया, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी संघर्ष, समर्पण और साहस का आदर्श स्थापित किया। उनका जीवन यह संदेश देता है कि स्वतंत्रता के लिए दृढ़ निश्चय, संगठित प्रयास और नेतृत्व की आवश्यकता होती है, और यही कारण है कि उन्हें भारतीय सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम का मार्गदर्शक माना जाता है।

निष्कर्ष

शचीन्द्रनाथ सान्याल भारतीय सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम के उन महान क्रांतिकारियों में से हैं, जिन्होंने अपने जीवन को देश की स्वतंत्रता और न्याय के लिए समर्पित कर दिया। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट था कि स्वतंत्रता केवल विचारों या भाषण से नहीं प्राप्त की जा सकती, बल्कि इसके लिए साहस, समर्पण और संगठित सशस्त्र प्रयासों की आवश्यकता होती है। उनके नेतृत्व, रणनीति और क्रांतिकारी गतिविधियों ने बंगाल तथा पूरे भारत में राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा दिया।

सान्याल का योगदान न केवल तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम में दिखाई देता है, बल्कि उनके जीवन और कार्य आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरक आदर्श भी हैं। उन्होंने युवाओं को संगठित करना, उन्हें प्रशिक्षण देना और राष्ट्रीय उद्देश्य के प्रति समर्पित करना सुनिश्चित किया। उनके दृष्टिकोण ने यह स्थापित किया कि संगठित और अनुशासित प्रयासों के माध्यम से ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता संभव है।

इस प्रकार शचीन्द्रनाथ सान्याल केवल एक क्रांतिकारी नेता नहीं, बल्कि सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम के मार्गदर्शक और प्रेरक भी थे। उनका जीवन यह संदेश देता है कि देशभक्ति, साहस और संगठन के माध्यम से ही असंभव को संभव बनाया जा सकता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उनका योगदान इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सारस्वत, रामकृष्ण.,भारत में सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन, प्रकाशक: राष्ट्रीय पुस्तकालय, 2005।
2. कुमार, श्याम.,बंगाल के क्रांतिकारी और स्वतंत्रता संग्राम, प्रकाशक: वर्धमान पब्लिकेशन्स, 2010।
3. "शचीन्द्रनाथ सान्याल.",विकिपीडिया, https://en.wikipedia.org/wiki/Shachindranath_Sanyal
4. "भारतीय सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी.", भारतीय संस्कृति पोर्टल, https://indianculture.gov.in/node/2820654
5. सिंह, हरिप्रसाद.,क्रांतिकारी नेतृत्व और स्वतंत्रता संग्राम, प्रकाशक: साहित्य भवन, 2008।

गीता के निष्काम कर्म–सिद्धान्त की मूल व्याख्या : एक समीक्षात्मक शोध–पत्र

डॉ. पवन पाठक*

सार (Abstract)

भगवद्गीता का "निष्काम कर्म" (कर्म-फल के प्रति आसक्ति त्याग कर कर्तव्य-पालन) भारतीय दार्शनिक परम्परा का ऐसा केन्द्रीय सिद्धान्त है जिसने नैतिकता, योग, भक्ति और सामाजिक-आचरण की व्याख्याओं को गहरे रूप से प्रभावित किया है। यह शोध-पत्र गीता के मूल श्लोकों–विशेषतः 2.47-48, 3.19-30, 18.9-11–के आलोक में निष्काम कर्म की अवधारणा का भाष्य प्रस्तुत करता है; शंकर, रामानुज, मध्व, ईसवीय कालीन और आधुनिक विद्वानों की टीका-परम्परा से साक्ष्य लेता है; और गांधी की "अनासक्ति-योग" व्याख्या सहित आधुनिक नैतिक-विमर्श एवं नीतिनिर्धारण में उसकी प्रासंगिकता पर विचार करता है। अंत में, निष्काम कर्म को कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति-मार्ग के सेतु के रूप में समझने का एक समन्वित मॉडल प्रस्तावित किया गया है।

कुंजीशब्द: निष्काम कर्म, कर्म-फल-त्याग, कर्मयोग, अनासक्ति, धर्म, गांधी, भगवद्गीत

1. भूमिका

महाभारत के भीष्म-पर्व का अंग होने के बावजूद भगवद्गीता ने स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में एक अनूठी दार्शनिक पहचान पाई है। गीता का नैतिक-केन्द्र "कर्म" है–परन्तु ऐसा कर्म जो फल-कामना से मुक्त हो, जो कर्तव्य-बोध से प्रेरित हो और जिसे ईश्वरार्पण-बुद्धि से किया जाए। यही "निष्काम कर्म" है। आधुनिक अध्येताओं ने ध्यान दिलाया है कि "निष्काम कर्म" पद यद्यपि सीधे शब्दों में गीता में नहीं आता, परन्तु "कर्म-फल-त्याग", "फलासक्ति-रहितता", "कर्मणि अधिकार" जैसी संकल्पनाएँ मिलकर उसे स्पष्ट करती हैं।

गांधी, तिलक, राधाकृष्णन, एजर्टन, सर्जण्ट इत्यादि ने गीता के सन्देश का हृदय निष्काम कर्म को बताया है–किसी पलायनवादी संन्यास के रूप में नहीं, बल्कि लोकमंगल के लिए अनुशासित, निडर और अनासक्त कर्म के रूप में। यह शोध-पत्र इसी केन्द्रीय सिद्धान्त की समीक्षा प्रस्तुत करता है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते..." (2.47-48)गीता का दूसरा अध्याय, जहाँ कृष्ण अर्जुन को उसके मोह को तोड़ने हेतु आत्मज्ञान का उपदेश देते हैं, निष्काम कर्म का बीजारोपण करता है। श्लोक 2.47 अर्जुन के लिए निर्देश है:

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥(तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, फलों में कभी नहीं। तू कर्मफल का हेतु मत हो और तेरी अकर्मण्यता में आसक्ति न हो।)

यह श्लोक तीन सूत्र देता है: (1) अधिकार का क्षेत्र केवल कर्म है, फल नहीं; (2) स्वयं को फल का कारण-भूत न मानना; (3) अकर्मण्यता में आसक्त न होना। अगला श्लोक (2.48) इस कर्म की मनःस्थिति बताता है:

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

* असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी पी.जी. कॉलेज (संघटक महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय), फाफामऊ, प्रयागराज। ई–मेल : 86pawanpathak86@gmail.com

(हे धनंजय, तू आसक्ति को त्यागकर, योग में स्थित होकर और सिद्धि-असिद्धि में समबुद्धि रखकर कर्म कर, क्योंकि समत्व ही योग कहलाता है।)

यहाँ 'समत्व-बुद्धि' निष्काम कर्म का मनोवैज्ञानिक प्राण है। यह सफलता और विफलता के द्वन्द्व से ऊपर उठकर कर्म करने की वह अवस्था है जहाँ कर्म का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ न होकर कर्म की पवित्रता एवं परिपूर्णता होती है।

कर्म-संन्यास नहीं, कर्मयोग (अध्याय 3)तीसरा अध्याय (कर्मयोग) इस सिद्धान्त को और स्पष्ट करता है। भगवान स्पष्ट करते हैं कि ज्ञान प्राप्ति के लिए केवल कर्म-त्याग (कर्म-संन्यास) पर्याप्त नहीं है।नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ (3.8)
(तू अपने नियत कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है और अकर्मण्यता से तो तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।)

इसके बाद 3.19-30 में कर्मयोग का विस्तार मिलता है। 3.19 में कहा गया है–"तस्मात्सर्वेषु कालेषु कर्माणि कुर्वन्" (अतः सर्वदा कर्म करता हुआ)... अर्थात कर्म का अविराम। परन्तु इस कर्म को करने का ढंग वही अनासक्ति-पूर्ण है। श्लोक 3.30 में इसका चरम समाधान प्रस्तुत किया गया है:

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा। निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥(अन्तःकरण से सब कर्मों को मुझमें अर्पण करके, आशा रहित और ममतारहित होकर, शोक से रहित होकर युद्ध कर।)यहाँ 'ईश्वरार्पण' फल-त्याग की आध्यात्मिक युक्ति है। कर्मफल को ईश्वर पर छोड़ देने से व्यक्ति का अहंकार विलुप्त होता है और कर्म एक पवित्र अनुष्ठान बन जाता है।

अन्तिम संलयन (अध्याय 18)अठारहवें अध्याय में, गीता के उपदेश का सार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। श्लोक 18.7 में कहा गया है कि नियत कर्म (स्वधर्म) का त्याग उचित नहीं है:

"नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते। मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥"

(नियत कर्म के त्याग को तो त्याग ही नहीं कहा जा सकता। अज्ञानवश उसका त्याग तामस कहलाता है।)

श्लोक 18.9-11 में कर्म, कर्ता और फल के प्रति जो सम्बन्ध होना चाहिए, उसे फिर से दोहराया गया है, जो निष्काम कर्म के सिद्धान्त का ही पुष्टिकरण है। इस प्रकार, गीता का निष्काम कर्म कर्मयोग-प्रणाली का समाहार है जो ज्ञान और भक्ति से सन्नद्ध होकर मुक्ति-मार्ग प्रशस्त करता है।

निष्काम कर्म का 'कर्म' कोई भी अनियमित क्रिया नहीं, बल्कि 'स्वधर्म'–व्यक्ति के सामाजिक, पारिवारिक और व्यावसायिक स्थान से उपजा कर्तव्य–है। स्वधर्म के बिना फल-त्याग केवल निष्क्रियता या उदासीनता बन सकता है। अतः गीता बार-बार "अकर्मण्यता" से सावधान करती है। फ्रैंकलिन एजर्टन अपने अनुवाद और विश्लेषण में यही रेखांकित करते हैं कि गीता कर्म-संन्यास की अपेक्षा "right performance of duty" (कर्तव्य का सही निष्पादन) पर बल देती है।

"मां फलेषु कदाचन" के दो गहन आशय हैं–(क) फल के प्रति आसक्ति का त्याग, और (ख) फल का 'कारण' अपने अहं को न मानना। इससे 'कर्तृत्व-भान' (doership) ढीला पड़ता है। जब व्यक्ति स्वयं को कर्ता नहीं मानता, तो परिणाम की चिंता से उत्पन्न नैतिक-दुविधा, भय या मोह स्वतः ही कम हो जाता है। समकालीन शोधकर्ता शुनमुगम (2022, 2024) इसे नैतिक-विकास में "detached duty" (अनासक्त कर्तव्य) का सूत्र मानते हैं।

"समत्वं योग उच्यते" निष्काम कर्म की मानसिकी है–सफलता-असफलता, लाभ-हानि, जय-पराजय में समभाव। यह समत्व ही मन की वह स्थिर अवस्था है जो कर्म को भावनात्मक उथल-पुथल से मुक्त रखती है। विन्थ्रोप सर्जण्ट के विस्तृत पद्य-अनुवाद और टीका में यह समत्व कर्मयोग की मुख्य पहचान के रूप में आता है।

कर्म-फल-त्याग का नकारात्मक पक्ष (फल से मोह छोड़ना) ही नहीं, एक सकारात्मक रूप भी है–वह है "मयि अर्पय" (3.30), अर्थात कर्म को ईश्वर को समर्पित करना। यह भक्ति का प्रवेश द्वार है। रामानुज की विशिष्टाद्वैत परम्परा में यह शरणागति-भाव से जुड़ता है, जबकि मध्व के द्वैतवाद में यह ईश्वर-प्रधान भक्ति के साथ जुड़ता है। डॉ. राधाकृष्णन की टीका भी कर्म को ईश्वर-प्रेम और लोक-सेवा से जोड़कर पढ़ती है, जिससे निष्काम कर्म एक सेवा-भाव में परिवर्तित हो जाता है।

शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त) के अनुसार ज्ञान-प्रधान मुक्ति-मार्ग सर्वोपरि है। उनकी दृष्टि में निष्काम कर्म अज्ञान-क्षय और चित्त-शुद्धि का साधन मात्र है। यह ज्ञानोन्मुखी एक preparatory discipline (प्रारम्भिक अनुशासन) है। कर्मफल का त्याग इसलिए आवश्यक है ताकि व्यक्ति का चित्त बंधनों से मुक्त होकर ब्रह्मज्ञान की ओर अग्रसर हो सके।

रामानुज (विशिष्टाद्वैत): रामानुज के लिए निष्काम कर्म भक्ति-समन्वित कर्मयोग है। कर्म का ईश्वरार्पण भक्ति का अंग है। फल-त्याग से जो चित्त-शुद्धि होती है, वह ईश्वर के प्रति प्रपत्ति (समर्पण) के लिए आवश्यक है। यहाँ कर्म भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाता है।

मध्व (द्वैत वेदान्त): मध्व के दर्शन में ईश्वर और जीव के बीच स्पष्ट भेद है। निष्काम कर्म ईश्वर की आज्ञा-पालन और उनकी सेवा का एक रूप है। कर्मफल का त्याग इसलिए है क्योंकि समस्त फल ईश्वर की इच्छा से ही मिलता है, कर्ता के अहं से नहीं।

इन तीनों आचार्यों की व्याख्याएँ निष्काम कर्म को सामाजिक-समरसता और व्यवस्था से जोड़ती हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने स्वधर्म का निष्काम भाव से पालन समग्र सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

तिलक के "गीतारहस्य" में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने ग्रन्थ "गीतारहस्य" में गीता के मूल सन्देश को "निष्काम कर्मयोग" ही माना। उन्होंने जोर देकर कहा कि गीता कर्म-संन्यास का नहीं, बल्कि कर्तव्य-पालन के अनासक्त मार्ग का उपदेश देती है। तिलक की यह व्याख्या औपनिवेशिक भारत के सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में अत्यधिक प्रासंगिक थी। इसने भारतीयों को यह सिखाया कि फल की चिंता किए बिना, स्वतंत्रता के लिए निडर होकर संघर्ष करना ही उनका निष्काम कर्म (स्वधर्म) है।

गांधी का "अनासक्ति-योग" से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने अपने अनुवाद-टिप्पणी का नाम ही "अनासक्ति-योग" रखा। उनके लिए गीता का केन्द्रीय संदेश "स्वार्थरहित, फल-त्याग-प्रधान कर्म" था और अहिंसा उसका आवश्यक साधन। गांधी की व्याख्या में, निष्काम कर्म का आशय है: निष्ठापूर्वक कर्तव्य (सत्य और अहिंसा के पालन सहित) करते हुए परिणाम को ईश्वर पर छोड़ देना। उन्होंने इसे ट्रस्टीशिप जैसी आधुनिक सामाजिक-आर्थिक अवधारणाओं से जोड़ा, जहाँ एक व्यक्ति सम्पत्ति का संरक्षक मात्र है, स्वामी नहीं।

निष्काम कर्म और इमैनुएल कांत के "categorical imperative" (निश्चयात्मक imperative) के बीच समरूपताएँ देखी गई हैं। कांत का सिद्धान्त भी कर्तव्य-निष्ठ आचरण पर बल देता है; उसका आधार भावनाएँ या फल की इच्छा नहीं, बल्कि तर्कसंगत नैतिक नियम है। दोनों ही फल-उन्मुख नैतिकता (utilitarianism) से दूरी बनाते हैं। हालाँकि, मुख्य अंतर यह है कि गीता का ईश्वर-समर्पण और योग-अनुभूति का पक्ष कांत के शुष्क तर्कवाद से भिन्न है। गीता की नैतिकता समावेशी, अनुभव-संचालित और योग-समर्थित है।

अक्सर नैतिक निर्णय-विफलता का कारण "परिणाम-भय" होता है–प्रतिष्ठा, लाभ, असफलता या आलोचना का डर। निष्काम कर्म इस मानसिक जाल को काटता है। यह बोध कराता है कि परिणाम का नियंत्रण सीमित है; प्रक्रिया-निष्ठा, ईमानदारी और साध्य-साधन की शुचिता ही हमारे वश में है। इसलिए "कर्मणि अधिकार" का परिपालन निर्णय-शक्ति को स्थिर और निडर बनाता है।

समत्व-बुद्धि और फल-त्याग का आशय अकर्मण्यता नहीं है; बल्कि यह "प्रक्रिया-निष्ठ उत्कृष्टता" (Process Excellence) को बढ़ावा देता है। इसमें कौशल, परिश्रम, सहयोग, और पारदर्शिता पर बल दिया जाता है, परन्तु परिणाम-आसक्ति से मुक्ति होती है। गीता (3.19) कहती है–"आसक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः"–अनासक्त होकर कर्म करने वाला व्यक्ति परम सिद्धि को प्राप्त होता है। आधुनिक प्रबंधन सिद्धान्त भी मानते हैं कि प्रक्रिया पर ध्यान देने से परिणाम स्वतः ही बेहतर आते हैं।

सामाजिक समरसता की स्थापना के गीता के निष्काम कर्म की अत्यधिक आवश्यकता है।कर्म-फल-त्याग की चेतना सामाजिक व्यवहार में ईर्ष्या, द्वेष और हिंसा को घटाती है। जब व्यक्ति दूसरे के सफल होने पर उससे ईर्ष्या नहीं करता और स्वयं की विफलता पर निराश नहीं होता, तो एक स्वस्थ और सहयोगात्मक सामाजिक वातावरण का निर्माण होता है। शुनमुगम (2022) का शोध इसी बात की पुष्टि करता है कि निष्काम कर्म का सिद्धान्त सामाजिक-सांस्कृतिक समेकन को बढ़ावा देता है।

निष्काम कर्म और उसके फल को लेकर मतभिन्नता की भी स्थिति भी दृष्टिगोचर होती है।"निष्काम कर्म = निष्क्रियता" निराकरण: यह सर्वाधिक प्रचलित भ्रान्ति है। गीता (2.47) स्पष्ट रूप से कहती है–"मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि"–अर्थात अकर्मण्यता में आसक्त मत हो। पलायन नहीं, बल्कि सक्रिय कर्तव्य-पालन अपेक्षित है।

"फल की कोई परवाह ही न करना" निराकरण: गीता फल-उदासीनता (detachment) सिखाती है, फल-अनुत्तरदायित्व (irresponsibility) नहीं। युक्तिसंगत नियोजन, परीक्षण और दायित्व-निर्वहन आवश्यक हैं। आसक्ति का त्याग "चिन्ता-रहितता" है, "उत्तरदायित्व-रहितता" नहीं।

"नैतिकता का आधार केवल परिणाम है" निराकरण: गीता परिणाम-मुखी नैतिकता (जहाँ साधन की पवित्रता गौण हो) की जकड़न से मुक्त करती है, पर परिणाम-सजगता नष्ट नहीं करती। बल्कि, साध्य-साधन-शुचिता, समत्व और ईश्वरार्पण से परिणाम-गुणवत्ता स्वतः ही बढ़ती है।

गांधी के अनुसार गीता का "अनासक्ति-योग" सार्वजनिक जीवन की नैतिकता का आधार बन सकता है। उन्होंने इसे सेवा-भाव, सत्य-अहिंसा, ट्रस्टीशिप (सभी धन समाज की न्यासित सम्पत्ति है), और शक्ति-संयम से जोड़ा। वे लिखते हैं: "गीता का केन्द्रीय सन्देश 'अनासक्ति' है... और अनासक्ति अहिंसा से भी ऊपर है; पर अहिंसा उसकी आवश्यक दीक्षा है।" इससे निष्काम कर्म का चरित्र केवल आध्यात्मिक साधना नहीं रह जाता, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक आचरण में भी रूपान्तरित होता है–जहाँ एक साधक सत्ता-लाभ के बिना शुद्ध रूप से लोक-कल्याण में प्रवृत्त होता है।

तुलनात्मक विमर्श में कांत का 'कर्तव्य-निष्ठ' प्रतिमान की भूमिका और व्यापकता प्रासंगिक है।जैसा कि पहले उल्लेख किया गया, कांत का "categorical imperative" कर्तव्य-निष्ठा और साधन-शुचिता पर बल देता है, जो निष्काम कर्म से मिलता-जुलता है। दोनों ही बाह्य प्रलोभनों या भय से मुक्त नैतिक कर्म पर जोर देते हैं। हालाँकि, कांत का दर्शन शुद्ध तर्क पर आधारित है और एक सार्वभौमिक नियम (universal law) की खोज करता है। वहीं, गीता का दर्शन आत्मज्ञान, योगिक अनुभूति और ईश्वर-समर्पण पर टिका है। कांत के लिए कर्तव्य एक तार्किक अनिवार्यता है, जबकि गीता के लिए यह धर्म, योग और भक्ति का समन्वय है। अतः निष्काम कर्म को यूरोपीय नैतिकता के किसी एक ढाँचे में सीमित करना उचित नहीं है।

निष्काम कर्म को गीता के तीन प्रमुख योगों के सेतु के रूप में देखा जा सकता है। निम्न मॉडल इसे स्पष्ट करता है:

(क) **ज्ञान-आधार (ज्ञानयोग):** आत्मा-अनात्मा का विवेक (अध्याय 2), कर्तृत्व-अहं का शैथिल्य, और परिणाम-नियंत्रण की सीमा का बोध–इस ज्ञान से फल-आसक्ति स्वतः ही घटती है। (2.11-30; 2.47-48)

(ख) **योग-अनुभूति (कर्मयोग):** समत्व-बुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, ध्यान–मानसिक स्थिरता की इस अवस्था से कर्म की गुणवत्ता और निष्पक्षता बढ़ती है। (6.1-7; 2.48)

(ग) **भक्ति-समर्पण (भक्तियोग):** "मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य"–कर्म-तुष्टि और अहं-विराम; फल-त्याग का सकारात्मक विकल्प–ईश्वरार्पण। (3.30; 9.27)

यह समन्वय बताता है कि निष्काम कर्म कोई नकारात्मक "त्याग" भर नहीं है; वह ज्ञान से निर्देशित, योग से समर्थित और भक्ति से समर्पित एक सक्रिय कर्तव्य-धर्म है।

गीता और उसके सिद्धांतों प्रासंगिकता सर्वकालिक है।आज के समय में भी वैश्विक स्तर पर अनेक समस्याओं का हल गीता प्रस्तुत करती है। लोक-नीति और प्रशासन: निष्पक्षता, हित-संघर्ष से दूरी, प्रक्रिया-निष्ठता–ये सब निष्काम कर्म की संस्थागत प्रतिध्वनियाँ हैं। एक नौकरशाह या नेता यदि फल (पदोन्नति, प्रशंसा) की आसक्ति छोड़कर कर्तव्यपालन करे, तो भ्रष्टाचार स्वतः कम होगा।परिश्रम-केन्द्रितता और परिणाम-आसक्ति-निवारण से विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं में नैतिक निर्भीकता आती है, जिससे मौलिक शोध को बढ़ावा मिलता है।अनिश्चित बाजारों में प्रक्रिया-ईमानदारी, टीम-कल्याण और दीर्घकालिक दृष्टि रखना–यह निष्काम कर्म का आधुनिक स्वरूप है। short-term gains के चक्कर में ethics नहीं त्यागना।समर्पण-भाव, कर्तव्य-निष्ठा और अहिंसा के साझा मूल्य–ईसाई मठवासी जीवन, सूफी परम्परा आदि में भी निष्काम-भाव की प्रतिध्वनियाँ चिन्हित की गई हैं।

गीता का निष्काम कर्म-सिद्धान्त मानव-कर्म की तीन मूल समस्याओं–(i) अहं-कृत कर्तृत्व-भान, (ii) परिणाम-आसक्ति से उत्पन्न चिंता, मोह, और (iii) पलायन-प्रवृत्ति–का एक साथ समाधान प्रस्तुत करता है। यह समाधान किसी एकांगी दार्शनिक खाँचे में नहीं सिमटता; वह ज्ञान-योग-भक्ति का सेतु है। तिलक और गांधी जैसे विचारकों ने इसे जन-जीवन में सक्रिय, साहसिक और लोक-सेवी आचरण के रूप में रूपायित किया। आधुनिक नैतिक-दर्शन एवं प्रबंधन-शास्त्र इसे कर्तव्य-निष्ठ व्यवहार और प्रक्रिया-उत्कृष्टता से जोड़ता है। परिणामतः निष्काम कर्म केवल आध्यात्मिक उन्नति का साधन मात्र नहीं, बल्कि व्यक्तिगत विकास, संस्थागत नैतिकता और एक समतामूलक वैश्विक नागरिक-जीवन की स्थायी बुनियाद है। यह सिद्धान्त आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कुरुक्षेत्र के मैदान में था, क्योंकि यह कर्म की शाश्वत दुविधा का शाश्वत समाधान प्रस्तुत करता है।

संदर्भ (मानक पुस्तकें व शोध-निबन्ध)

1. Edgerton, Franklin. The Bhagavad Gītā (Harvard Oriental Series, Vols. 38–39). Cambridge: Harvard University Press, 1944.
2. Sargeant, Winthrop. The Bhagavad Gita: Twenty-Fifth-Anniversary Edition, ed. Christopher Key Chapple. Albany: SUNY Press.
3. Radhakrishnan, S. Bhagavadgītā: With an Introductory Essay, Sanskrit Text, English Translation & Notes. London: George Allen & Unwin.
4. Zaehner, R. C. The Bhagavad-Gītā: With a Commentary Based on the Original Sources. Oxford: Clarendon Press, 1969.
5. Tilak, Bal Gangadhar. Śrīmad Bhagavadgītā-Rahasya (Karmayoga-Śāstra).
6. Gandhi, M. K. *Anāsaktiyoga: The Message of the Gī

तुलनात्मक ध्वनिलक्षणम्

पतितपावनमिश्रः*

मम्मटस्य ध्वनिलक्षणेन सह विश्वनाथस्य ध्वनिलक्षणस्य साम्यत्यम्

काव्यप्रकाशकारः मम्मटस्य काव्यप्रकाशे प्रथमोल्लासे, ध्वनेः लक्षणं भवति - "इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिवुद्धै कथितः" ।[1]

एतस्य ध्वनिलक्षणस्याभिप्रायं भवति - यत्र वा यस्मिन् काव्ये वाच्यार्थात् व्यङ्ग्यार्थस्य अतिशय चारुत्वं विद्यते तत्र उत्तमकाव्यं वा ध्वनिकाव्यं भवति। अत्र 'इदं' इत्यस्याभिप्रायं भवति 'काव्यम्' परन्तु वैयाकरणानां अयमेवाभिप्रायं यत् ध्वनिविषयेऽस्मिन् प्रधानभूत स्फोटरूपव्यङ्ग्यं व्यञ्जित व्यञ्जक शब्दो ध्वनिमिति । पतञ्जलिकृत महाभाष्येऽपि उक्तमस्ति - प्रतीतपदार्थको ध्वनि शब्दः उच्यते । यथा - शब्दं कुरु, मा शब्दं कार्षीः, शब्दकारी माणवकोऽयं । ध्वनिं कुर्वन् एवमुच्यते तस्मात् ध्वनि शब्दः । व्यैयाकरण मतेतु स्फुरति अर्थः अस्मादिति स्फोटः ।

ध्वनि विषयेऽपि मम्मटस्य अभिप्रायं भवति - "वाच्यार्थात् व्यङ्ग्यार्थस्य प्राधान्येन अतिशयचारुत्वेन ध्वनिः" ।

साम्यत्व - मम्मटस्य ध्विनि लक्षणेऽस्मिन् यदुक्तं तत् विश्वनाथस्य साहित्यदर्पणेऽस्मिन् ध्वनिविषये तदपिमुक्तमस्ति । यथा- "वाच्चातिशयिनीव्यङ्ग्ये ध्वनिस्तद्काव्यमुत्तमम्"[2] वाच्यार्थपेक्षया व्यङ्ग्यार्थस्य अतिशय प्राध्यान्यात् ध्वनिः भवति । विश्वनाथः ध्वनिकाव्यं, उत्तमकाव्यत्वेन अङ्गिकरोति । वृत्यान्तु अधिकतया स्फष्टीयते - "वाच्यादधिक चमत्कारिणि व्यङ्ग्यार्थ ध्वन्यतेऽस्मित्रिति व्युत्पत्या ध्वनिर्नामोत्तमं काव्यम्" ।

ध्वन्यते अर्थः अस्मिन् इति व्युत्पन्यानुसारं ध्वनि शब्दस्यार्थः अत्रैव ध्वनिकाव्यम् । इदं ध्वनिकाव्यं उत्तमकाव्यत्वेन मम्मटः काव्यप्रकाशे अङ्गीकरोति।

अत्र सरलतया उच्यते - ध्वन्यते व्यञ्जनया बोध्यते वाच्यार्थादधिकचमत्कारी अर्थः अस्मिन् काव्ये- इति व्युत्पत्यानुसारं ध्वनि शब्दस्यार्थः ध्वनिकाव्यम् । ध्वनि शब्दस्य चर्तुविधेभ्यो व्युत्पतिलभ्योर्थेभ्यः एतद् अन्यतमम् । 'ध्वन्' इत्यस्मात् धातोः अधिकरणार्थे उणादि इक् प्रत्ययेन ध्वनि शब्दः निष्पद्यते।

आनन्दवर्धनकृत ध्वनिलक्षणेन सह विश्वनाथकृत ध्वनिलक्षणसमीक्षणम्

साम्यत्व आनन्दवर्धनस्य ध्वन्यालोके ध्वनि लक्षणं भवति -

यत्रार्थो शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सुरिभिकथितः ॥

अर्थात् यत्र शब्दार्थः स्वार्थं गौणीकृत्य व्यञ्जनया यदर्थं प्रकाशयति तदेवार्थः प्रतीयमानार्थः वा ध्वन्यर्थः ।

विश्वनाथस्य ध्वनिलक्षणम् - "वाच्यातिशयिनीव्यङ्ग्येध्वनिस्तद् काव्यमुत्तमम्"[3] । अर्थात् वाच्यार्थात् व्यङ्ग्यार्थस्य सातिशयचारुत्वं यत्र वर्त्तते तत्र ध्वनिः इति विश्वनाथस्य ध्विनिविषये अभिप्रायं भवति।

आनन्दवर्धनस्य ध्वनि लक्षणे उक्तं - उपसर्जनीकृतस्यार्थो इत्यस्याभिप्रायं - वाच्यार्थस्य अङ्गत्वेन स्वीकृतः । वाच्यार्थस्य न्युनत्वे व्यङ्ग्यार्थस्य प्राधान्यम्। काव्यं नामो ध्वनिः ।

विश्वनाथोऽपि वाच्यार्थस्य अङ्गत्वं व्यङ्ग्यार्थस्य अङ्गीत्वं अङ्गीकरोति। वाच्यार्थपेक्षया व्यङ्ग्यार्थस्य प्राधान्येन ध्वनिः ।

तुलनात्मक ध्वनि लक्षणम्

संस्कृत अलंकारशाश्त्रेषु षड् सम्प्रदायाः वर्त्तन्ते । यथा - रसालङ्कारध्वनि वक्रोक्त्यादयः । एषु सम्प्रदायेषु ध्वनि सम्प्रदाय प्रमुखसम्प्रदायत्वेन सुविदितः । मुख्यतया आनन्दवर्धन-मम्मट-विश्वनाथस्य साहित्यदर्पणे च ध्वनिलक्षणं अत्रैव समालोच्यते । आदौ प्राचीनालङ्कार शास्त्रकारेषु राजानकोमानन्दवर्धनस्य ध्वन्यालोके यत् ध्वनिलक्षणं निरूपितम् तत्तु अत्रैव उपस्थाप्यते। यथा -

* **प्राध्यापकः, आनन्दपुरमहाविद्यालयः, केन्दुझर**

[1] काव्यप्रकाशः, प्रथम उल्लासः

[2] काव्यप्रकाशः, प्रथम उल्लासः

[3] साहित्यदर्पणम्

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥

इति आनन्दवर्धनः ध्वन्यालोकग्रन्थस्य प्रथमोद्यते ध्वनिलक्षणं प्रस्थावितम्।

यत्रार्थो वाच्यविशेषः वाचकविशेषः शब्दो वा समर्थ व्यङ्क्त; स काव्यविशेषो ध्वनिरिति। अनेन वाच्यवाचकचारुत्वहेतुभ्य उपमादिभ्यो अनुप्रासादिभ्यश्च विभक्त एव ध्वनेर्विषयः इति दर्शितम्। यदप्युक्तम् - यतो लक्षणकृतामेव स केवलं न प्रसिद्धः, लक्ष्ये तु परीक्षमाणे स एव सहृदयहृदयाह्लादकारि काव्यत्वम्। यतोहि-

"व्यङ्ग्य व्यञ्जकसम्बन्ध निवन्धन तयाध्वनि।
वाच्य वाचक चारूत्व हेत्वन्तः पातिता कृता॥"

काव्यप्रकाशानुसारं ध्वनिलक्षणम्

वाग्देवतावतारभूत आचार्य मम्मटः काव्यप्रकाश नामाख्यं अलंकार ग्रन्थं विरचयति। अलङ्कारग्रन्थेषु मम्मटाचार्य्यस्य काव्यप्रकाश अद्वितीय अलङ्कारग्रन्थत्वेन प्रसिद्धं समाद्रियते। मम्मटः भवति ध्वनिवादि आचार्यः। अतः असौ ध्वनिं स्वतन्त्रस्थानं प्रददति।

आलङ्कारशास्त्रेषु ये केचन आलङ्कारिकाः अलङ्कारग्रन्थं विरचयन्ति तेषु केचन आलङ्कारिकाः ध्वनिविषये समुस्थापयन्ति न तु सर्वे एव ध्वनितत्वं समुपस्थापयन्ति । तेषु आचार्य मम्मटोऽपि काव्यप्रकाशे काव्यभेद निरुपण प्रसङ्गेऽस्मिन् ध्वनिकाव्यं मुख्यकावत्वेन अङ्गिकरोति। अस्य मते काव्यं त्रिविधम्।

(१) ध्वनिकाव्यं वा उत्तमकाव्यम्

(२) गुणिभूतव्यङ्ग्यं वा मध्यमकाव्यम्

(३) चित्रकाव्यम् वा अधमकाव्यम्।

एतेषु काव्यभेदेषु आद्य काव्यभावेन धनिकाव्यं अङ्गिकरोति। अस्य ध्वनिकाव्यं वा उत्तमकाव्यस्य लक्षण अनेन समुपस्थापितः काव्यप्रकाशस्य प्रथमोल्लासे। यथा -

"इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्गये वाच्याद् ध्विनिवुधैः कथितः"।[4]

वुधैः व्यैयाकरणैः प्रधानभूत स्फोटरूप व्यङ्ग्य व्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः। ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि न्यग्भावितवाच्यव्यङ्ग्य व्यञ्जनसमर्थस्य शब्दार्थयुगलस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः।

उत्तमकाव्यस्य वा ध्वनिकाव्यस्य प्रसङ्गेऽस्मिन् उच्यते यस्मिन् काव्ये वाच्यार्थात् व्यङ्ग्यार्थस्य अतिशयचारुत्वं विद्यते तत् उत्तमकाव्यम् ध्वनिकाव्यम् इति विदुमभिमित्तं वर्त्तते। सूत्रेऽस्मिन् 'इदं' इत्यस्य पदस्यार्थः काव्यम् इति अवज्ञेयम्।

ध्वनिविषयेऽस्मिन् व्यैयाकरणानामभिमत्तं वर्तन्ते प्रधानभूत स्फोटरूपव्यङ्ग्य व्यञ्जित व्यञ्जकशब्दं ध्वनि इति अभिधियते।

एतास्मिन् विषये महाभाष्ये स्पष्टियते - "अथवा प्रतीत पदार्थको ध्वनिः शब्दः उच्यते"। शब्दं कुरु मा शब्दं कार्षोः, शब्दकारी माणवकोऽयम्। ध्वनिं कुर्वन् एवमुच्यते तस्मात् ध्वनिः शब्दः। व्यैयाकरण मते तु - स्फुटति अर्थः अस्मादिति स्फोटः। तेषां मत्ते कस्यापि शब्दस्य उच्चारणेन तस्यान्तिमवर्णः यावत् पर्यन्त उचारितं न भवति तावत् पर्यन्तं तस्य शब्दस्य अर्थप्रतीतिः न भवति। अन्तिम वर्गोचारणानन्तरं श्रोतृः मनसि स्थितानां वर्णानां समेल्य एक निर्दिष्टार्थः प्रकाशयन्ति। श्रोतायाः अर्थवोधः इत्थं भवति। एनं अन्त्यवद्धिनिग्राह्यरूपमिति कथ्यते। वैयाकरणमतावलम्बिनः आनन्दवर्धनादयः आलंकारिकाः शब्दार्थयुगलं ध्वनित्वेन स्वीकुर्वन्ति। यत् शब्दार्थयुगलं न्यग्भावित वाच्यव्यङ्ग्य व्यञ्जन समर्थः भवति। न्यग् भावित न्युनीकृतः वाच्यः, अभिधेयोऽर्थः, येन तादृशं यत् व्यहूयं, व्यञ्जना वृतिगम्यः अर्थः तस्य व्यञ्जने समर्थस्य शब्दार्थयुगलस्य इति। अर्थात् येन व्यङ्ग्यार्थेन वाच्यार्थः अप्रधान्यं भवेत्, तादृश व्यङ्ग्यार्थस्य व्यञ्जने समर्थ शब्दार्थयुगलं ध्वनिमिति साहित्यिकाः स्वीकुर्वन्ति।

मम्मटाचार्यः व्यञ्जनावादित्वेन उत्तमकाव्यं ध्वनिभावेन स्वीकरोति। वाच्यार्थात् व्यङ्ग्यास्यार्थस्य शातिशयचारूत्वं यत्र वर्त्तते तत्र ध्वनिः। परन्तु राजानकोमानन्दवर्धनस्य ध्वन्यालोके ध्वनि लक्षणं भवति।

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनी कृत स्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सुरिभिः कथितः॥[5]

यत्र शब्दार्थः स्वार्थं गौणिकृत्य व्यञ्जनया अपरार्थः व्यीतयतः तत्र ध्वनिमिति आनन्दवर्धनस्याशयः वर्तते।

---

[4] काव्यप्रकाशः, प्रथमोल्लासः

[5] ध्वन्यालोकः, प्रथमोद्योतः

ध्वनिविषये मम्मटाचार्येण दृष्टान्तः प्रदत्तः -

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मुष्टरागोऽधरः
नेत्रे दुरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः ।
मिथ्यावादिनि ! दूति ! वान्धवजनस्याज्ञात पीडागमे
वार्पी स्नानुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ॥

उदाहरणमिदं कवेः अमरूकस्य अमरूशतकात् समुद्धृतोऽस्ति । पद्येऽस्मिन् काऽपि नायिका स्वस्य नायकं दूत्या प्रेरयति । तदा नायकः कार्य्यवशात् नदितीरे आसीत् । इति स्नानार्थं गमनसमर्थ नायकस्य समीपे अवतीर्ण (उपस्थाप्य) तेन उपभोक्ता भवति । दूति उपभोगेन नायकस्य कामक्षुदा साकल्येन सः पुनश्चापि नायिकायाः समीपं नागतवान् । दूति नायिकां मिथ्या वचनं प्रकाशयति मम समयाभावात् अहं न स्नानार्थं न गतोऽस्मि । अहं समिपस्थ तडाणे स्नात्वा प्रत्यावर्त्तयामि । नायिका चातुरी भवति । सा वास्तविक तया प्रकृतस्थितिं परिज्ञाय दूति कथयति -

पद्येऽस्मिन् अर्थद्वयं समागतेऽपि नायिकया प्रयुक्त 'अधम' पदात् दूती नायकेन सह उपभोक्ता भवदिति ज्ञायते । अनेन पदेन दूतेः रमणेच्छेयां नायकस्य समीपं 'गताऽसि' इति प्रधानरूपेण व्यज्यते । यतोहि 'अधम' इत्ययं पदं निन्दार्थं प्रकाशयति । दूति उपभोगकालेन नायकेन निन्दितं कर्मं कृतम् । यदा नायिका परिज्ञाता तदा सा नायकं सम्मानीय व्यक्तिरूपेण न चिन्तयित्वा एकः निन्दनीय व्यक्तिरूपेण चिन्ता प्रकटिता । ततेन सा नायक प्रति 'अधम' इति पदं प्रयोगं कृतवती । एतद् 'अधम' पदं प्रयोगेण नायकः दूती उपभुक्ता इत्येवार्थं व्यज्यते ।

अत्र 'अधम' इत्यस्मात् वाच्यात् तदन्तिकमेवरन्तुं 'गताऽसि' इत्यस्य व्यङ्ग्यार्थस्य सातिशयचारूत्व सम्यत्वात् अत्र सम्भोगशृङ्गार रसः ध्वनि व्यज्यते ।

कविराज विश्वनाथस्य ध्वनि लक्षणेन सह आनन्दवर्द्धनस्य ध्वनिलक्षणं तुलनम्

उत्कलप्रदेशे लब्धजन्मा महाकवि चन्द्रशेखर सूनुः विश्वनाथो ध्वनि सम्प्रदायस्य विश्रुत आचार्यः । अनेन सर्वेषां साहित्यशास्त्रीय विषयाणां सारल्येन प्रतिपादनार्थं साहित्यदर्पणं प्रणीतम् । अयं साहित्यदर्पणो दृश्य-श्रव्योभयकाव्यस्यैक प्रतिपादनात् अतिशेते सर्वात्रपि काव्यशाश्त्रीयकग्रन्थान् । निश्चितरूपेण साहितशास्त्रे सन्ति प्रसिद्धा अनेके ग्रन्थाः किन्तु व्यापक विषयवस्तु संकलन दृष्ट्या सरल-सुललितपदावल्या च न कोऽपि ग्रन्थः साहित्यदर्पणस्य तुलनाकोटिमधिरोहति ।

कविराजो विश्वनाथस्य अलंकार ग्रन्थस्य नाम साहित्यदर्पणम्। अस्मिन्नेव शास्त्रे काव्य- काव्यलक्षण-भेद-रस-ध्वनि रीति गुणालंकारादीना वर्णनं भवति । परन्तु कविराजोविश्वनाथः चतुर्थपरिछेदे काव्यात्मभूतस्य ध्वनेः लक्षणं भेदप्रभेदं च प्रदर्शयति । ध्वनि लक्षणे तेनोक्तं -

"वाच्यातिशयिनीव्यङ्गयेध्वनिस्तद् व्यङ्ग्यमुत्तमम्" ।

अस्य ध्वनि लक्षणस्याभिप्रायं भवति - वाच्यपेक्षया व्यङ्गस्य अतिशयत्वं वा प्राधान्यं नाम ध्वनिः । व्यङ्ग्यार्थः यदि वाच्यार्थपेक्षया अधिक चमत्कारिः भवेत् तर्हि तत्रैव ध्वनिः वा उत्तमकाव्य भवति ।

ध्वन्यते अस्मिन् इति नाम व्यङ्ग्यार्थस्य चमत्कारीत्वम् । 'ध्वन्' इत्यस्मात् धातोः उणादि 'इ' प्रत्ययेन ध्वनि शब्दः निष्पद्यते । ध्वनिः यस्मिन्नेव काव्ये वर्त्तते तत्काव्य धनिकाव्यमित्युच्यते ।

ध्वन्यालोकस्य लोचनटीकानुसारं ध्वनि शब्दस्य चतुर्विधाः अर्थाः । यथा-

१. "ध्वनतीति ध्वनि" इति व्युत्पत्यानुसारं ध्वनि शब्दस्यार्थः व्यञ्जकार्थः ।
२. "ध्वन्यते इति ध्वनिः" इति व्युत्पत्यानुसारं ध्वनि शब्दस्यार्थः व्यङ्ग्यार्थः ।
३. "ध्वन्यते अनया" इति ध्वनि र्नाम व्यञ्जनाव्यापारः ।
४. ध्वन्यते अत्र इति ध्वनिः ध्वनिकाव्यम् ।

ध्वनि काव्यं स्फोटरूप नित्यशब्दस्य व्यञ्जक यत् अनित्य शब्दः तत् ध्वनिः । एतादृश चतुर्विधं ध्वनेः अधिकरण व्युत्पन्नं काव्यार्थक ध्वनि शब्दं विश्वनाथः स्वीकरोति ।

आनन्दवर्द्धनस्य ध्वनिलक्षणम्

ध्वनिकार राजानक आनन्दवर्धनः ध्वन्यालोके ध्वनेः लक्षणं उपस्थापयति । यथा -

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनी कृतस्वार्थौ ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सुरिभिः कथितः ॥[6]

[6] ध्वन्यालोकः प्रथमोद्योत

ध्वनिकारः आनन्दवर्धनस्य मताभिप्रायेण काव्यात्मभूत ध्वनेः लक्षणार्थः भवति यत्र अर्थः आत्मानं शब्दः स्वार्थ गौणि कृत्य व्यञ्जनाशक्त्या अपरार्थं द्योतयति तत्र ध्वनि भवतीति आनन्दवर्धनस्यमाशयः।

यत्र वाच्यार्थः वाचकविशेष शब्दः व्यञ्जना शक्त्या प्रतीयमानरूपार्थं प्रकाशयति । अभिव्यक्त प्रकाशितात्मकं काव्यं ध्वनिकाव्यमित्युच्यते।

यत्र काव्ये उपसर्जनी कृतौ व्यङ्ग्योपकारकत्वेनाप्रधानी कृतौ स्वमात्मा अर्थत्ववाभ्यां तौ गुणीकृतात्माऽर्थौ गुणीकृताभिद्येन शब्दस्य तं सहृदयानन्दनेन प्रसिद्धं तदनुभागकगोचरं "प्रतीयमानं पुनरन्यदेव" इत्यादिना पूर्वप्रकान्तं वा अर्थः व्यङ्क्तो व्यञ्जनाशक्त्या प्रकाश्यतः, स काव्यस्य विशेष उत्तमं काव्यं ध्वनि रिति नाम्ना पण्डितैः कथितः। तथा च "अप्रधानो मुपसर्जन इत्यमरः। इह व्यङ्क्तः इति द्विवचनं वा शब्दस्य समुचयद्योतकतां दढयति। न चैकतरस्य व्यञ्जकतायां काव्यऽव्याप्तिरिति वाच्यम्, एकस्य व्यञ्जनकताया अपरस्य सहकारित्व स्वीकारात्। तदुक्तं साहित्यदर्पणे -

"शब्दव्यध्यो व्यनवृत्यर्थः शब्दोऽप्यर्थान्तराश्रयः।
एकस्य व्यञ्जकत्वे तदन्यस्य सहकारिता॥"

इत्युगयोपि व्यञ्जकत्वमायातमेव । तेनात्र द्विवचनं असंगति वचनं भटनायकस्य चिन्त्यमेव । काव्यशब्दो गुणालंकारो प्रशाद्यितो शब्दार्थयोः सर्वातिशयतिशाच सहेय प्रकाशकत्वे व्यामित्व भनुम्नुमते । खनतीति बन्यतेडणेन वेति व्युत्पत्तिः शब्दार्थयो विनित्येऽवधार्यते है। शब्दस्य पश्चादुपादानमेव प्राधान्यं सूचयति।

यतु व्यक्ति ध्वनि शब्दं शब्दनिवेशञ्च खण्डेयता महिमभट्टेन -

वाच्यस्तदनुमितो वा यत्रार्थोऽर्थान्तरं प्रकाशयति।
समन्ध्यतः कुत्रचित् सा काव्यानुमितिरित्युक्ता॥

इति कारिकास्वरूपं परिवर्त्यं एतस्यानुमानस्यैव लक्षणं नान्यस्य इत्यभिहितम्। तदवसरे ध्वनिस्थापनेन यदननुमेवत्व कथनेन च स्फुटं निरस्यते । गीतादौ शब्दस्य व्यञ्जकताया व्यङ्क्तमनुभव सन्निवेशो अपि आवश्यक एव । तथा च-स्वविषयक प्रतीति जन्य चमत्कारं न्युनचमत्कारजनक प्रतीति विषयत्व-स्व व्यञ्जकघटितत्व सम्बन्धयाभ्यां व्यङ्ग्यविशिष्ट शब्दार्थमयत्वम्, इति ध्वनि काव्यस्य, लक्षणनिष्कर्षः । विछितिविशेषाधायक शब्दार्थयोः काव्यत्वमिति नये लक्षण मिदम्। तादृशशब्दमात्रस्य तत्वाङ्गीकारमते तु शब्द एव व्यङ्ग्यवैशिष्ट्यं योजनीय।

आलंकारिककविराजो विश्वनाथस्य साहित्यदर्पणानुसारं ध्वनिकार आनन्दवर्द्धनेन सह ध्वनिलक्षणं यत् विश्वनाथस्य साहित्यदर्पणे वाचक शब्द वाच्यार्थपेक्षया व्यङ्ग्ययार्थस्य अतिशय रमणीयत्वे ध्वनिः। किन्तु आनन्दवर्द्धनस्य ध्वन्यालोकोऽपि यदा अर्थो नाम वाच्यार्थः वाचकश्च स्वार्थं गौणिकृत्य व्यञ्जनाशक्त्या प्रतीयमानार्थरूपं द्योतयतः तत्र ध्वनिः भवतिति मत्तम् । अनयोः ध्वनिलक्षणयोर्मध्ये अयमेव निष्कर्षः यत् वाचकशब्द वाच्यार्थस्य च न्युनत्ववोध व्यङ्ग्ययार्थः व्यञ्जकशब्दादेव । वाच्यार्थः अङ्गः व्यङ्ग्यार्थस्य काव्येऽस्मिन् व्यड्यार्थस्य अङ्गत्वेन वाच्यार्थः न तु अङ्गी इति आनन्दवर्द्धनस्यमाशयः।

आनन्दवर्द्धनस्य ध्वनि लक्षणेन सह मम्मटस्य ध्वनिलक्षणम् तुलनम्

राजानको आनन्दवर्धनः ध्वन्यालोके ध्वनेः स्वतन्त्रं लक्षण प्रस्तौति। यथा-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थ मुपसर्जनी कृत स्वार्थो।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति भूरिभिः कथितः॥[7]

यस्मिन् काव्ये वाचकशब्दः वाच्यार्थस्य स्वार्थ गौणिकृत्य व्यञ्जना शक्त्या प्रतीयमानार्थः व्यङ्ग्यार्थं वा द्योतयतः तत्र ध्वनि ध्वनिकाव्यं भवति।

वाग्देवतावतारभूतमाचार्य्यः मम्मटेन ध्वनिलक्षणं समुपस्थापितम्। यथा-

"इदमुत्तमेमतिशयिनीव्यङ्ग्ये वाच्याध्वनिवुधैकथितः"।

मम्मटस्य ध्वनिलक्षणस्यमभिप्रायं भवति - यस्मिन् काव्ये वाच्यार्थपेक्षया व्यङ्ग्यार्थस्य अतिशय रमणीयत्व चारुत्वता विद्यते तत्र ध्वनिकाव्य उत्तमकाव्यं वा भवेत् । मम्मटाचार्यस्य ध्वनि लक्षणे यद् इदं शब्दः वर्त्तते तस्य इदं शब्दस्यार्थः - उत्तमकाव्यम् ध्वनिकाव्यम्।

ଔଷଧ

[7] ध्वन्यालोकः, प्रथमोद्यतः

उच्च रक्तचाप रोगियों में विकार की व्यापकता एवं अहम–शक्ति के बीच सह–संबंध का विश्लेषण

आनंद जयकिशन*
डॉ. सत्यरतन प्रसाद सिंह**

सार–

यह अध्ययन गया जिला (बिहार) में उच्च रक्तचाप से ग्रस्त 20 वृद्ध पुरुषों एवं 20 वृद्ध महिलाओं पर आधारित है, जिसका उद्देश्य विकार (distress) की व्यापकता और उनके आत्म–संवेदन (अहम–शक्ति/ego strength) के बीच सह–संबंध को विश्लेषित करना है। उच्च रक्तचाप एक शारीरिक विकार है जो मानसिक स्वास्थ्य से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। इस शोध में मान्य माप उपकरणों का उपयोग करते हुए डेटा संग्रह किया गया और Pearson's correlation के माध्यम से विश्लेषण किया गया। परिणामों से पता चला कि विकार की तीव्रता जितनी अधिक होती है, अहम–शक्ति उतनी ही कम पाई जाती है। यह सह–संबंध नकारात्मक और मध्यम दर्जे का था, जो सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण था। इस शोध से यह संकेत मिलता है कि उच्च रक्तचाप रोगियों के मानसिक पहलुओं पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है, विशेष रूप से उनकी आत्म–संवेदन शक्ति को बढ़ाने के लिए।

मुख्य शब्द– *उच्च रक्तचाप, विकार, अहम–शक्ति, सह–संबंध, वृद्ध, एवं मानसिक स्वास्थ्य आदि।*

आज की तेजी से बदलती जीवनशैली, मानसिक तनाव, असंतुलित आहार एवं शारीरिक निष्क्रियता के कारण उच्च रक्तचाप एक सामान्य किन्तु गंभीर स्वास्थ्य समस्या बन चुकी है। यह न केवल शरीर को प्रभावित करता है, बल्कि इसका मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। विशेषतः वृद्ध जनसंख्या में यह समस्या अधिक तीव्र होती है। उच्च रक्तचाप (Hypertension) एक वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है।

लाजारस और फोकमैन (1984) ने अपने मॉडल में यह बताया कि तनाव की स्थिति में व्यक्ति का संज्ञानात्मक मूल्यांकन (cognitive appraisal) और सामना करने की रणनीतियाँ (coping strategies) उसकी मानसिक स्थिति और व्यवहार को प्रभावित करती हैं। यह सिद्धांत उच्च रक्तचाप के संदर्भ में भी प्रासंगिक है, क्योंकि लंबे समय तक बना रहने वाला मनोवैज्ञानिक तनाव रक्तचाप को बढ़ा सकता है।[1]

स्पीलबर्गर (1983) द्वारा विकसित स्टेट–ट्रेट एंग्जाइटी इन्वेंटरी ने चिंता को मापने का एक विश्वसनीय उपकरण प्रदान किया। उच्च रक्तचाप वाले मरीजों में क्षणिक चिंता और स्थायी चिंता दोनों का स्तर अधिक पाया गया है, जिससे उनकी स्थिति और जटिल हो सकती है।[2]

शर्मा और गुप्ता (2018) ने पाया कि बुजुर्ग उच्च रक्तचाप वाले मरीजों में तनाव, नींद की कमी, और सामाजिक अलगाव जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ अधिक होती हैं। अध्ययन के अनुसार, भावनात्मक सहयोग और परामर्श इन प्रभावों को कम कर सकता है।[3]

वर्मा और सिन्हा (2020) के अध्ययन में बताया गया कि पुरानी बीमारी के साथ जीने वाले व्यक्तियों में "अहंकार की शक्ति" जितनी अधिक होती है, वे उतने ही बेहतर तरीके से मानसिक रूप से समायोजित हो पाते हैं। यह उच्च रक्तचाप के रोगियों में भी प्रासंगिक है।[4]

डब्ल्यूएचओ (2020), के अनुसार, विश्व में हर चार वयस्कों में से एक को उच्च रक्तचाप है। यह हृदय रोग, स्ट्रोक और मृत्यु का प्रमुख कारण है। रिपोर्ट में बताया गया है कि उच्च रक्तचाप का प्रसार निम्न और मध्यम आय वाले देशों में अधिक है। रिपोर्ट और अन्य अध्ययनों से स्पष्ट है कि उच्च रक्तचाप एक साइलेंट किलर है, जिसका नियंत्रण बहुआयामी प्रयासों कृ व्यक्तिगत, सामाजिक और नीतिगत स्तर पर कृ आवश्यक है।[5]

---

* शोध–छात्र, मनोविज्ञान विभाग, मगध विश्वविधालय, बोधगया

** सेवा–निवृत प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, मगध विश्वविधालय, बोधगया

सिंह और कौर (2019) के अध्ययन में पाया गया कि उच्च रक्तचाप से निपटने के तरीके पुरुषों और महिलाओं में भिन्न होते हैं। महिलाएँ भावनात्मक समर्थन और सामाजिक जुड़ाव पर अधिक निर्भर करती हैं, जबकि पुरुष समस्या–समाधान केंद्रित दृष्टिकोण अपनाते हैं।[6]

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICMR, 2021) की रिपोर्ट के अनुसार, उच्च रक्तचाप जैसे गैर–संचारी रोगों में मानसिक स्वास्थ्य की उपेक्षा रोग की जटिलता को बढ़ा देती है। इसलिए, मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं को सामान्य चिकित्सा देखभाल में शामिल करना आवश्यक है।[7] उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि उच्च रक्तचाप का संबंध केवल जैविक कारणों से नहीं बल्कि मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक कारकों से भी है। तनाव प्रबंधन, सकारात्मक सामना करने की रणनीतियाँ, और मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देने से इस रोग का नियंत्रण अधिक प्रभावी हो सकता है।

विकार– विकार एक मानसिक–भावनात्मक स्थिति है, जिसमें व्यक्ति अत्यधिक तनाव, चिंता, थकावट, मानसिक असंतुलन एवं निराशा का अनुभव करता है। यह स्थिति लंबे समय तक बनी रहे तो यह मानसिक और शारीरिक दोनों स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है। विकार की व्यापकता इस अध्ययन में स्पष्ट रूप से सामने आई है, जो यह दर्शाती है कि उच्च रक्तचाप केवल एक शारीरिक समस्या नहीं, बल्कि यह मानसिक स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव डालता है। मानसिक विकार की पहचान और समय रहते मनोवैज्ञानिक सहयोग प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है।

अहम–शक्ति–अहम–शक्ति, एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है जिसे पहली बार सिगमंड फ्रायड ने प्रस्तुत किया था। यह शक्ति व्यक्ति को आंतरिक और बाह्य तनावों के बीच संतुलन बनाए रखने में सहायक होती है। जिन रोगियों की अहम–शक्ति अधिक होती है, वे अपनी बीमारी और उससे जुड़ी चिंता का बेहतर सामना कर पाते हैं।

इस प्रकार विकार एवं अहम–शक्ति व्यक्ति के संपूर्ण स्वास्थ्य को प्रभावित करती है, विशेषकर तब, जब वह पहले से ही किसी दीर्घकालिक शारीरिक रोग जैसे उच्च रक्तचाप से ग्रसित हो। वृद्धावस्था में यह प्रभाव और अधिक तीव्र हो जाता है। इस अध्ययन में यह स्पष्ट रूप से सामने आया कि वृद्ध उच्च रक्तचाप रोगियों में मानसिक विकार की व्यापकता अधिक थी, और इसका सीधा प्रभाव उनकी अहम–शक्ति, आत्मविश्वास, और उपचार में भागीदारी पर पड़ा। विकार के कारण रोगी अक्सर नकारात्मक विचारों में घिर जाते हैं, जिससे वे न तो अपनी बीमारी को लेकर जागरूक रहते हैं, और न ही दवा, आहार या जीवनशैली संबंधी अनुशासन का पालन कर पाते हैं। परिणामस्वरूप, उनका रक्तचाप नियंत्रण से बाहर हो जाता है, और स्थिति और अधिक जटिल बन जाती है। विशेष रूप से वृद्ध महिलाएं, जिनमें सामाजिक समर्थन अपेक्षाकृत कम होता है, वे अधिक चिंता, अवसाद और मानसिक थकावट का अनुभव करती हैं। मानसिक विकारों का यह बोझ धीरे–धीरे उनकी जीवन की गुणवत्ता, पारिवारिक संबंधों और उपचार में विश्वास को प्रभावित करता है। अतः यह आवश्यक है कि उच्च रक्तचाप जैसे शारीरिक रोगों की चिकित्सा के साथ–साथ रोगियों की मानसिक स्थिति की भी गहराई से जांच और देखभाल की जाए।

Freidman & Rosenman (1974) उन्होंने यह पाया कि हृदय संबंधी रोग और मानसिक तनाव में प्रत्यक्ष संबंध है। उनके Type A Behavior Pattern सिद्धांत के अनुसार, ऐसे व्यक्ति जो प्रतिस्पर्धात्मक और तनावग्रस्त होते हैं, उनमें उच्च रक्तचाप और हृदय रोग का खतरा अधिक होता है।

Spielberger (1983) उनके Anxiety Inventory मॉडल से पता चलता है कि रोगग्रस्त व्यक्तियों में state और trait anxiety अधिक होती है, जो उनके समग्र मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

Lazarus & Folkman (1984) उन्होंने "Stress Appraisal and Coping" मॉडल में स्पष्ट किया कि अहम–शक्ति एक व्यक्ति की तनाव से निपटने की क्षमता का सूचक है। मजबूत अहम–शक्ति वाले व्यक्ति अधिक संतुलित व्यवहार दर्शाते हैं।

Verma & Sinha (2020) ने भारत में विभिन्न स्थानीय अध्ययनों में यह देखा गया है कि वृद्ध रोगियों में मानसिक तनाव एवं आत्मबल (Ego Strength) की कमी के कारण उनका समायोजन स्तर कमजोर होता है।

मानसिक स्थितियों का व्यक्ति की अहम–शक्ति पर सीधा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि जब कोई व्यक्ति लगातार तनाव, चिंता या भावनात्मक असंतुलन की स्थिति में होता है, तो उसकी आत्म–नियंत्रण, निर्णय क्षमता और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रभावित हो जाता है। अहम–शक्ति वह मानसिक आधार है, जो व्यक्ति को मानसिक विकारों से उबरने में सहायता करता है। जब मानसिक स्थितियाँ अस्थिर होती हैं, तो

अहम–शक्ति क्षीण होने लगती है। वहीं मानसिक अस्थिरता व्यक्ति की अहम–शक्ति को कमजोर बना सकती है, जिससे वह तनाव से प्रभावी ढंग से निपटने में असमर्थ हो जाता है।

वृद्धावस्था स्वयं में एक संवेदनशील मानसिक अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति शारीरिक कमजोरी, सामाजिक एकाकीपन और भावनात्मक असुरक्षा का अनुभव करता है। जब इसके साथ उच्च रक्तचाप जैसी चिरकालिक बीमारी जुड़ जाती है, तो मानसिक विकार की संभावना और अधिक बढ़ जाती है। इस अध्ययन में यह पाया गया कि वृद्ध उच्च रक्तचाप रोगियों में चिंता, तनाव, और मानसिक अस्थिरता का स्तर अधिक था, जो उनकी अहम–शक्ति (Ego Strength) को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहा था। कमजोर अहम–शक्ति वाले रोगी स्वयं को परिस्थितियों के सामने असहाय महसूस करते हैं, निर्णय लेने में असमर्थ होते हैं और उपचार के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं। विशेष रूप से वृद्ध महिलाएं, जो अक्सर सामाजिक व भावनात्मक समर्थन से वंचित होती हैं, उनमें यह प्रभाव अधिक तीव्र रूप से देखा गया। अतः स्पष्ट है कि वृद्ध उच्च रक्तचाप रोगियों के उपचार में केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक पहलुओं की भी गंभीरता से आवश्यकता है।

अध्ययन की आवश्यकता– इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि उच्च रक्तचाप से ग्रस्त वृद्ध पुरुषों और महिलाओं में विकार की स्थिति कितनी व्यापक है और यह उनकी अहम–शक्ति को किस हद तक प्रभावित करती है। साथ ही, यह अध्ययन लिंग के आधार पर भी तुलनात्मक जानकारी प्रदान करता है।

अध्ययन का उद्देश्य–

- गया जिला (बिहार) के वृद्ध उच्च रक्तचाप रोगियों में विकार (distress) की व्यापकता का अध्ययन करना।
- वृद्ध पुरुषों एवं महिलाओं में अहम–शक्ति (ego strength) का तुलनात्मक विश्लेषण करना।
- विकार एवं अहम–शक्ति के बीच सह–संबंध (correlation) की पहचान करना।
- लिंग के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य में अंतर का विश्लेषण करना।

परिकल्पना–

1. विकार एवं अहम–शक्ति के बीच सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण नकारात्मक सह–संबंध होगा।
2. वृद्ध पुरुषों एवं महिलाओं के अहम–शक्ति के स्तर में महत्वपूर्ण अंतर होगा।

नमूना– शोध में गया जिला (बिहार) के 40 उच्च रक्तचाप से ग्रस्त वृद्ध प्रतिभागियों को शामिल किया गया, जिनमें से 20 महिलाएं एवं 20 पुरुष थे। चयन सुविधा नमूना विधि (Convenient Sampling) द्वारा किया गया।

माप उपकरण–

1. विकार मापन स्केल– रोगियों में मानसिक तनाव, चिंता एवं असहजता को मापने हेतु विश्वसनीय स्केल का प्रयोग किया गया।
2. अहम–शक्ति स्केल (Ego Strength Scale)– यह स्केल व्यक्ति की आंतरिक मानसिक शक्ति को मापता है, जैसे आत्म–नियंत्रण, आत्मबल, निर्णय क्षमता आदि।

डेटा संग्रह की विधि– प्रतिभागियों से व्यक्तिगत रूप से संपर्क करके प्रश्नावली भरवाई गई। सभी प्रतिक्रियाएँ गोपनीय रखी गईं।

उच्च रक्तचाप रोगियों में विकार स्तर के स्कोर का औसत अंतरों को देखना है। महिलाओं और पुरुषों की विकार स्तर के स्थिति का टी अनुपात सारणी–1 में विभक्त किया जा रहा है–

सारणी–1

उच्च रक्तचाप महिलाओं और पुरुषों में विकार स्तर का प्राप्तांक एवं सार्थक्ता अंतर

विकार स्तर समूह	उत्तरदाता	माध्य	मानक विचलन	टी	सार्थकता
पुरुष	60	24.82	2.95	2.68	$p<0.05$
महिला	60	26.61	3.12		

सारणी–1 में महिलाओं और पुरुषों की विकार स्तर का दोनो समूहों में के माध्य मान के प्राप्तांकों का सार्थक अंतर में टी अनुपात=2.68, स्वतत्र चर=38, जबकि सार्थक्ता अंतर 0.5 पाया गया। सारणी–1 से स्पष्ट है, कि उच्च रक्तचाप के माध्यम से महिलाओं और पुरुषों के बीच विकार स्तर में अंतर का विश्लेषण किया गया। परिणामों में पाया गया, जो दर्शाता है कि दोनों समूहों के बीच विकार स्तर में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर है। अतः प्राप्त परिणाम परिकल्पना को सार्थकता को दर्शाती है।

अहम–शक्ति स्कोरः–

सारणी–2

उच्च रक्तचाप महिलाओं और पुरुषों में अहम–शक्ति का प्राप्तांक एवं सार्थक्ता अंतर

अहम–शक्ति **समूह**	**उत्तरदाता**	**माध्य**	**मानक विचलन**	**टी**	**सार्थकता**
पुरुष	60	23.90	2.86	2.12	$p<0.05$
महिला	60	21.41	3.21		

सारणी–2 में महिलाओं और पुरुषों में अहम–शक्ति का दोनो समूहों में के माध्य मान के प्राप्तांकों का सार्थक अंतर में टी अनुपात=2.68, स्वतत्र चर=38, जबकि सार्थक्ता अंतर 0.5 पाया गया। स्पष्ट है, कि उच्च रक्तचाप में महिलाओं और पुरुषों के बीच अहम–शक्ति में अंतर का विश्लेषण किया गया। परिणामों में पाया गया, जो दर्शाता है कि दोनों समूहों के बीच अहम–शक्ति में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर है। अतः प्राप्त परिणाम परिकल्पना को सार्थकता को दर्शाती है।

अहम–शक्ति स्कोर एवं विकार स्तर के बीच सह–संबंध :–

सारणी–2

उच्च रक्तचाप महिलाओं और पुरुषों में अहम–शक्ति स्कोर एवं विकार स्तर के बीच सह–संबंधों का सार्थक्ता अंतर

समूह	**उत्तरदाता**	r	**सार्थकता**
पुरुष	60	0.46	$p<0.01$
महिला	60		

सारणी–2 में महिलाओं और पुरुषों में **अहम–शक्ति स्कोर एवं विकार स्तर के बीच सह–संबंध** का दोनो समूहों में के माध्य मान के प्राप्तांकों का सार्थक अंतर में r=0.46, स्वतत्र चर=2, जबकि सार्थक्ता अंतर 0.5 पाया गया। स्पष्ट है, कि उच्च रक्तचाप में महिलाओं और पुरुषों के बीच **अहम–शक्ति स्कोर एवं विकार स्तर के बीच सह–संबंध** का विश्लेषण किया गया। परिणामों में पाया गया, जो दर्शाता है कि दोनों समूहों के बीच महत्वपूर्ण अंतर है। अतः प्राप्त परिणाम परिकल्पना को सार्थकता को दर्शाती है।

निष्कर्ष– इस अध्ययन के परिणामों से यह स्पष्ट हुआ कि वृद्ध उच्च रक्तचाप रोगियों में मानसिक विकार की व्यापकता उल्लेखनीय रूप से अधिक है और यह सीधे तौर पर उनकी अहम–शक्ति को प्रभावित करता है। च्मंतेवद सह–संबंध परीक्षण में विकार और अहम–शक्ति के बीच नकारात्मक मध्यम दर्जे का सह–संबंध (–0. 46) पाया गया, जो सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण था ($p<0.01$)। इसका अर्थ यह है कि जैसे–जैसे रोगियों में विकार की तीव्रता बढ़ती है, वैसे–वैसे उनकी मानसिक शक्ति, आत्म–नियंत्रण और समस्याओं से निपटने की क्षमता घटती जाती है।

वहीं लिंग के आधार पर विश्लेषण में यह पाया गया कि वृद्ध महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक मानसिक विकार का अनुभव करती हैं, जबकि पुरुषों में औसतन अहम–शक्ति अधिक पाई गई। यह अंतर सामाजिक संरचना, पारिवारिक भूमिका, और भावनात्मक सहारा मिलने या न मिलने से जुड़ा हो सकता है। महिलाओं में सामाजिक निर्भरता अधिक होने के कारण वे तनावपूर्ण स्थितियों को अकेले संभालने में कठिनाई अनुभव करती हैं, जिससे उनकी मानसिक शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यह निष्कर्ष Lazarus और Folkman के तनाव–अभियोजन मॉडल और थ्तमनक की अहम–शक्ति अवधारणा से मेल खाता है, जिसमें कहा गया है कि व्यक्ति की मानसिक क्षमता यह निर्धारित करती है कि वह बाहरी दबावों और आंतरिक भावनात्मक असंतुलनों से कैसे निपटता है।

इस अध्ययन के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि शारीरिक रोगों के साथ मानसिक पहलुओं की उपेक्षा रोग की गंभीरता को बढ़ा सकती है। मानसिक विकारों से ग्रसित रोगी उपचार में कम रुचि लेते हैं, औषधियों का पालन ठीक से नहीं करते, और जीवनशैली में आवश्यक परिवर्तन नहीं अपनाते।

इसलिए, केवल औषधीय इलाज ही पर्याप्त नहीं है। रोगियों को मानसिक रूप से भी सशक्त बनाना आवश्यक है, जिससे उनकी अहम–शक्ति को बढ़ाया जा सके, और वे अपनी स्थिति को अधिक सकारात्मक ढंग से संभाल सकें।

चर्चा– इस अध्ययन में प्राप्त निष्कर्ष इस बात की पुष्टि करते हैं कि उच्च रक्तचाप रोगियों में मानसिक विकार की स्थिति व्यापक है और यह उनकी अहम–शक्ति (महव`जतमदहजी) को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। Pearson's correlation के माध्यम से प्राप्त –0.46 का सह–संबंध यह दर्शाता है कि जैसे–जैसे व्यक्ति में

मानसिक विकार (distres) की तीव्रता बढ़ती है, वैसे–वैसे उसकी आत्म–नियंत्रण, आत्मबल और जीवन की ओर दृष्टिकोण कमजोर होता जाता है।

वृद्ध महिलाओं में विकार का औसत पुरुषों की तुलना में अधिक पाया गया, जबकि अहम–शक्ति का स्तर पुरुषों में अपेक्षाकृत अधिक था। इसका एक कारण सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, भावनात्मक निर्भरता, तथा सामाजिक समर्थन की कमी हो सकती है, जो महिलाओं को मानसिक रूप से अधिक प्रभावित करता है।

इन परिणामों की पुष्टि पूर्व के शोधों से भी होती है। जैसे कि Lazarus & Folkman (1984) के तनाव–अभियोजन सिद्धांत के अनुसार, उच्च तनाव और कम आत्मबल का परस्पर नकारात्मक संबंध होता है। इसी प्रकार, भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी कई अध्ययन यह दिखा चुके हैं कि वृद्धावस्था में सामाजिक समर्थन की कमी और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं आत्म–बल को प्रभावित करती हैं।

यह भी देखा गया कि जो रोगी अपनी समस्या को स्वीकार करते हुए सक्रिय रूप से अभियोजन (coping) रणनीतियाँ अपनाते हैं, उनमें मानसिक विकार की तीव्रता कम होती है और उनका समायोजन स्तर बेहतर होता है।

निष्कर्ष–

1. उच्च रक्तचाप से पीड़ित वृद्ध पुरुषों एवं महिलाओं में विकार की स्थिति मध्यम से उच्च स्तर तक पाई गई।
2. विकार एवं अहम–शक्ति के बीच एक नकारात्मक और मध्यम दर्जे का सह–संबंध पाया गया, जो सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण था।
3. वृद्ध पुरुषों की तुलना में महिलाओं में विकार अधिक और अहम–शक्ति कम पाई गई।
4. यह शोध मानसिक स्वास्थ्य और दीर्घकालिक रोगों के बीच गहरे संबंध को रेखांकित करता है।

सुझाव–

1. मानसिक स्वास्थ्य जांच– उच्च रक्तचाप रोगियों की नियमित मानसिक स्वास्थ्य जांच की जानी चाहिए।
2. परामर्श सेवाएं–जिला स्वास्थ्य केंद्रों पर मानसिक परामर्शदाता उपलब्ध कराए जाएँ, विशेषतः वृद्धों के लिए।
3. महिलाओं पर विशेष ध्यान– वृद्ध महिलाओं के लिए भावनात्मक समर्थन समूह, जागरूकता कार्यक्रम, और परिवारिक समर्थन को बढ़ावा दिया जाए।
4. योग एवं ध्यान– अहम–शक्ति को बढ़ाने के लिए रोगियों को योग, ध्यान और आत्म–प्रेरणा आधारित कार्यक्रमों से जोड़ा जाए।
5. सामाजिक भागीदारी– वृद्धों को सामाजिक गतिविधियों में शामिल करने से उनका मानसिक स्वास्थ्य बेहतर हो सकता है।

सीमाएं–

1. नमूना आकार छोटा (केवल 40 प्रतिभागी) था, जिससे निष्कर्षों की सामान्यता सीमित हो सकती है।
2. सभी प्रतिभागी एक ही जिले (गया, बिहार) से थे, जिससे क्षेत्रीय विविधता का आकलन संभव नहीं हो पाया।
3. केवल आत्म–रिपोर्टिंग टूल्स का उपयोग किया गयाय चिकित्सीय निदान नहीं किया गया।
4. शोध में केवल दो चर (विकार और अहम–शक्ति) को ध्यान में रखा गया, अन्य मानसिक कारकों की उपेक्षा की गई।

संदर्भ सूची

1. लाजारस, आर. एस., और फोकमैन, एस. (1984), तनाव, मूल्यांकन और सामना। न्यूयॉकरू स्प्रिंगर पब्लिशिंग।
2. स्पीलबर्गर, सी. डी. (1983) स्टेट–ट्रेट एंग्जाइटी इन्वेंटरी मैनुअल (फॉर्म ल)। पालो ऑल्टो, कैलिफोर्निया– कंसल्टिंग साइकोलॉजिस्ट्स प्रेस।
3. शर्मा, पी., और गुप्ता, आर. (2018) बुजुर्ग मरीजों में उच्च रक्तचाप का मनोवैज्ञानिक प्रभाव। इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी, 12(2), 45–52।
4. वर्मा, एस., और सिन्हा, के. (2020), पुरानी बीमारी में अहंकार की शक्ति और मानसिक समायोजन। जर्नल ऑफ इंडियन मेंटल हेल्थ, 6(1), 31–39।
5. डब्ल्यूएचओ (2020), उच्च रक्तचाप– मुख्य तथ्य https://www-who-int से लिया गया।
6. सिंह, आर., और कौर, जे. (2019)। उच्च रक्तचाप और उससे निपटने में लैंगिक अंतर। इंडियन जर्नल ऑफ जेरोन्टोलॉजी, 33(1), 77–89।
7. भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर)। (2021)। गैर–संचारी रोगों में मानसिक स्वास्थ्य। नई दिल्ली– आईसीएमआर।

आजकल की विकास–यात्रा

सपना कुमारी*
प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय**
प्रो. (डॉ.) कल्याण कुमार झा***

सारांश

हिन्दी पत्रकारिता का उद्‌भव विपरीत परिस्थितियों में हुआ था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारिक केन्द्र कलकत्ता से इसकी यात्रा प्रारम्भ हुई। भारत में मुद्रित पत्रकारिता के उद्‌भव के 46 वर्षों के बाद उदन्त–मार्तण्ड के रूप में इसका उन्मेष हुआ। हिन्दी में साहित्यिक पत्रकारिता कोश का वास्तविक स्वरूप भारतेन्दु युग में मिला बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सरस्वती, छत्तीसगढ़ मित्र, इन्दु प्रभा, कर्मवीर, माधुरी, सुधा और हंस जैसी स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। ब्रिटिश पार्लियामेंट में अधीन भारत की अंगरेज सरकार के प्रकाशन विभाग ने पहले उर्दू में और फिर हिन्दी में मासिक आजकल का प्रकाशन मई 1945 से प्रारम्भ किया।

बीज शब्दः– उन्मेष, संस्कृति, युद्धोत्तर, विशेषांक, अंतरप्रांतीय

परिचय

पत्रिका का प्रकाशन इस आशा के साथ हुआ था कि जनता को देश और विदेशों में हो रही है घटनाओं, आनदोलनों ......आदि अनेक विविध विषयों के प्रति जागरूक किया जा सके। कालांतर में यह शुद्ध साहित्यिक पत्रिका के रूप में जानी जाएगी, इसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी शुरुआत में। कई साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आंदोलन का गवाह ही नहीं प्रामाणिक दस्तावेज है यह पत्रिका। सम्पादकों ने अपने–अपने कार्यकाल में पत्रिका को बेहतर बनाने हेतु अनेक प्रयोग किए, पाठकों को प्रयोग पसंद भी आए। कई सारे स्तम्भों की भी शुरूआत हुई पत्रिका को सुरुचिपूर्ण एवं रोचक बनाने के लिए। देश ही नहीं विदेशों में भी पत्रिका की मांग है और पत्रिका लोकप्रिय है आजकल के प्रथम सम्पादक कुँवर किशोर सेठ थे और उपसम्पादक के रूप में केशव गोपाल निगम एवं ओमप्रकाश वैश्य का नाम छपता था। 1 जुलाई 1945 के अंक से उपसम्पादक के रूप में एक और नाम जुड़ गया शम्भुनाथ शेष का कुँवर किशोर सेठ आठ माह तक पत्रिका के सम्पादन कार्य से जुड़े रहें। युनाइटेड पब्लिकेशन्स अथवा संयुक्त प्रकाशनालय द्वारा इस पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। यह प्रकाशनालय आजकल हिन्दी का प्रकाशन प्रारम्भ होने से पूर्व से विभिन्न पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन कर रहा था। जिसके विषय में प्रवेशांक में ही परिचय मिल जाता है–

"युनाइटिड पब्लिकेशन्स अथवा संयुक्त प्रकाशनालय गत कई वर्षों से सफलतापूर्वक विभिन्न भाषाओं में कई उच्च– कोटि की पत्रिकाओं का प्रकाशन कर रहा है। हिन्दी आजकल इस प्रकाशनालय की नयी भेंट है। ये सभी प्रकाशन हजारों की संख्या में छपते हैं पर इनकी ग्राहक संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी, उर्दू, पश्तो, फारसी, अरबी और हिन्दी में निकलने वाली हमारी पत्रिकाओं का उद्देश्य भारत और उसके पड़ोसी देशों में मेल– जोल उत्पन्न करना और एक को दूसरे की संस्कृति, इतिहास और आधुनिक हलचलों से परिचित कराना है। हमारे विभिन्न प्रकाशन नीचे दिये गये हैं –

नाम	भाषा	प्रकार
1) बिगुल	फ्रासीसी, अरबी, फारसी	सचित्र मासिक
2) दुनिया	रूसी–अंग्रेजी	सचित्र मासिक
	फारसी–अंग्रेजी	"
	उर्दू–पश्तो	"

* नेट (जेआरएफ), शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

** विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

*** विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

	रोमन उर्दू–अंग्रेजी	"
3) आहंग	अंग्रेजी–फरसी	सचित्र त्रैमासिक
4) अल–अरब	अरबी	सचित्र मासिक
5) ताजमहल	अफगानी फारसी	"
6) इण्डियन क्रानिकल	रूसी	" द्विमासिक
7) सोवियत यूनियन न्यूज	अंग्रेजी	" मासिक
8) इण्डिया	अंग्रेजी–चीनी	" "
9) पर्सपौक्टिव(जून मास से प्रकाशित होगा)	अंग्रेजी	" "
10)हे–डे(बच्चो के लिए)	अंग्रेजी	" "
11)नौनिहाल	उर्दू	" "
12)आजकल(उर्दू)	उर्दू	" पाक्षिक
13)आजकल(हिन्दी)	हिन्दी	" मासिक
14)जवन्द	पश्तो	" "''[1]

प्रकाशन–विभाग प्रत्येक वर्ष 'भारत' शीर्षक से वार्षिक संदर्भ – ग्रन्थ निकालता है 1945 से ही। इसमें भारत के सामान्य परिचय के साथ वर्ष भर का लेखा–जोखा रहता है। पत्रिका के दूसरे अंक मे इसके विषय में देखा जा सकता है;

''इण्डिया १६४५''

शीघ्र ही प्रकाशित होगी ! अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लीजिये।

मुख्य भाग

इसमें शिक्षा, फतहपुर सीकरी, भारत और युद्धोत्तर संसार, नालन्दा, अजन्ता, रुई के कारखाने, भारत का कच्चा पदार्थ, कृषि, बिजली, आधुनिक भारत की नारी तथा भारतीय नृत्य आदि जैसे विभिन्न विषयों पर अंग्रेजी में रोचक तथा ज्ञानवर्धक सचित्र लेख होंगे । इसकी चित्रावली बड़ी सुन्दर और बहुरंगी है। बादशाही मस्जिद लाहौर, आयरन एण्ड स्टील वर्क्स पॉवर स्टेशन; उदयपुर; इस्लामिया महाविद्यालय, पेशावर; बनारस हिंदू विश्वविद्यालय; नसीम व नलिनी जयवन्त आदि के सुन्दर ११ रंगीन चित्र होंगे ।

पृष्ठ संख्या ५२ मूल्य १

रेलवे बुकस्टॉल एवं बड़े शहरों के सब पुस्तक विक्रेताओं के यहां से कापियां शीघ्र ही मिल सकेंगी।''[2]

प्रवेशांक से ही कविता, कहानी, लेख, एकांकी, पुस्तक समीक्षा आदि अनेक विधाओं का प्रकाशन हुआ। बाद के समय में विशेषांक, साक्षात्कार, परिचर्चा, अंतरप्रांतीय साहित्य के अनुवाद का प्रकाशन, विदेशी साहित्य के अनुवाद आदि का प्रकाशन प्रमुखता से हुआ। आजकल में अब तक जितने भी सम्पादक हुए उनकी सूची और उनका कार्यकाल निम्नलिखित हैः–

- कुँवर किशोर सेठ (मई, 1945 – दिसंबर, 1945)
- अनंत मराल शास्त्री (जनवरी 1946–फरवरी 1948)
- देवेंद्र सत्यार्थी (मार्च 1948– दिसंबर – दिसंबर 1954)
- चंद्रगुप्त विद्यालंकार (जनवरी 1955–मई 1963)
- मन्मथनाथ गुप्त (जून 1963–फरवरी 1967)
- केशव गोपाल निगम (मार्च 1967– अप्रैल 1976)
- भगीरथ पांडेय (मई 1976– सितंबर 1979)
- द्रोणवीर कोहली (अक्टूबर 1979– अक्टूबर 1980)
- वेद प्रकाश अरोड़ा (नवंबर 1980–मई 1982)
- नरेंद्र सिन्हा (जून 1982–जनवरी 1988)
- विजय अग्रवाल (मार्च 1988– जून 1988)
- प्रवीण उपाध्याय (जुलाई 1988– दिसंबर 1989)
- सुरेश चंद्र शर्मा (जनवरी 1990– मई 1992)
- प्रवीण उपाध्याय (जून 1992–जुलाई 1993)
- प्रताप सिंह बिष्ट (पंकज विष्ट) (अगस्त 1993 जुलाई 1998)

- सुभाष सेतिया (अगस्त 1998 – अक्टूबर 2001)
- बलदेव सिंह मदान (नवंबर 2001 – मई 2003)
- योगेन्द्र छत्र शर्मा (कार्यवाहक) (जून 2003–जुलाई 2004)
- प्रवीण उपाध्याय (प्रभारी) (अगस्त 2004 – मार्च 2007)
- योगेन्द्र दत्त शर्मा (प्रभारी) (अप्रैल 2007 – सितंबर 2010)
- सीमा ओझा (अक्टूबर 2010– अक्टूबर 2012)
- कैलाश दहिया (जून 2013– फरवरी 2014)
- राजेन्द्र भट्ट/ फरहत परवीन (दिसंबर 2012 – फरवरी 2015)
- राकेशरेणु/फरहत परवीन (अक्टूबर 2015 – फरवरी 2017)
- राकेशरेण/ जयसिंह (मार्च 2017 – अक्टूबर 2017)
- राकेशरेणु/ फरहत परवीन (नवंबर 2017)

कुँवर किशोर सेठ के पश्चात अनंत मराल शास्त्री के ऊपर पत्रिका के सम्पादन का दायित्व आया कई सारे स्वनामधन्य देशी तथा विदेशी रचनाकारों की रचनाएँ छपीं इनके कार्यकाल में, जिनमें कुछ प्रमुख हैं श्रामचंद्र तिवारी, मारिस हिंदूस, सी.एम. केटरनस, गाडफ्रे रोहडस, बलदेव सहाय, देवेंद्र सत्यार्थी, सुशीला बलबीर शिशु ट्रैवर एलन, डब्ल्यू.एच. लॉरेंस, मुकुट बिहारी वर्मा, विष्णु कुमारी श्रीवास्तव मंजू अर्नेस्ट सी. रोप्स, रवींद्रनाथ टैगोर, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, उषा मित्रा, गुलाब राय, एस.पी. बी. मैस, प्रभाकर माचवे, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, पदुमलाल पुन्नालाल बाख्शी, बीए. संतराम, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, आगस्टस म्योर, लक्ष्मीप्रसाद मिश्र, हीरादेवी चतुर्वेदी, चतुरसेन शास्त्री, मोहनलाल महतो वियोगी, विष्णु प्रभाकर, लेवीनिया एल. बेली, एन. वाई, पॉलीकोफ, थियो.डब्ल्यू. ला. दूरी, शैल रस्तोगी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, सोहनलाल द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, सुनीति कुमार चटर्जी आदि ।

आजकल के तीसरे सम्पादक देवेंद्र सत्यार्थी के कार्यकाल में पत्रिका में अनेकों तरह के परिवर्तन हुए। इनके कार्यकाल में लोककथा, लोकगीत, लोकसाहित्य से संबंधित अनगिनत महत्वपूर्ण लेखों का प्रकाशन प्रमुखता से हुआ। देशी तथा विदेशी भाषाओं एवं बोलियों के भी लोककथा, लोकसाहित्य के अनुवाद का प्रकाशन प्रमुखता से हुआ । कुछ की सूची निम्नलिखित हैः–

शीर्षक	लेखक	वर्ष
1) कूच बिहार में लोकगीत	इंदुशेखर	जनवरी, 1950
2) भारतीय कथाओं की विदेश–यात्रा	रामपूजन तिवारी	जनवरी, 1950
3) चौकोस्लोवाकिया के लोकगीत	मिलाड़ा कालाबोवा	मार्च, 1951
4) संथाली लोकगीत	देवेंद्र सत्यार्थी	दिसंबर, 1952
5) कश्मीरी लोकगीत	देवेंद्र सत्यार्थी	जनवरी, 1953
6) मुंडा लोकगीत	महादेवलाल बरगाह	फरवरी, 1953
7) निमाड़ी लोकगीत	रामनारायण उपाध्याय	मार्च, 1953
8) पहाड़िया लोकगीत	भगवानदास गुप्त, विनोद	अप्रैल, 1953
9) भारतीय लोक कथाएं	देवेंद्र सत्यार्थी	मई, 1954
10) कश्मीरी लोक कथाएं	देवेंद्र सत्यार्थी	मई, 1954

अंतरप्रांतीय साहित्य के अनुवाद का प्रकाशन, इन्हीं के कार्यकाल में शुरू हुआ उस समय के साहित्यिक मुद्दों और बहसों पर केन्द्रित परिचर्चा का भी आयोजन इनके कार्यकाल में हुआ, कुछ की सूची देखी जा सकती हैः– हिंदी आलोचना (जुलाई 1951), सुमित्रानंदन पंत, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नलिन विलोचन शर्मा, प्रकाश चंद्र गुप्त व नंद दुलारे वाजपेयी, 'हिंदी की प्रयोगशील कविता (अगस्त 1951) उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय, सुमित्रानंदन पंत, शिवमंगल सिंह सुमन, धर्मवीर भारती व भगवतीचरण वर्मा हिंदी आलोचना की नई प्रवृत्तियां (फरवरी 1953) अज्ञेय, डॉ० नगेंद्र व प्रभाकर माचवे।

15 अप्रैल 1949 के अंक में प्रान्तीय साहित्य और राष्ट्रभाषा शीर्षक से महत्वपूर्ण सम्पादकीय का प्रकाशन हुआ, व सम्पादकीय का यह अंश द्रष्टव्य है–

प्रांतीय साहित्य और राष्ट्रभाषा स्वतन्त्र भारत में प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य की पहले से कही अधिक उसति होगी, यह पाल विशेष जोर दे कर कही जा सकती है। राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा विविध

भाषाओं का साहित्य समूचे देशलए उपलब्ध हो सकेगा धौर इस प्रकार एक सिरे से दूसरे सिंह तक राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना जनता को प्रगति पथ पर अग्रसर होने प्रेरणा देती रहेगी।

इन्हीं दिनों नई दिल्ली में प्रवासी बंगीय साहित्य सम्मेलन के घसर पर उद्योग व रसद विभाग के मन्त्री डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने तिनिधियों का स्वागत करते हुए देश की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं निकटतम सम्पर्क और सहयोग की प्रर्चा की। उन्होंने यह सुझाव रखा कि विविध भाषाषों की साहित्यिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपना राष्ट्रीय दायित्व समझें धौर एक धखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन की स्थापना करें जहां के एक मंच पर मिल सकें और भारतीय संस्कृति का एक नया सामान्य उद्गम श्ढ निकालें । डा० मुखर्जी ने देवनागरी लिपि के राष्ट्रीय महत्व पर भी जोर दिया और कहा कि इसे विविध शन्तीय लिपियों के साथ ही साथ सामान्य लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। आगे चल कर उन्होंने कहा कि प्रान्तीय भाषाओं का राहित्य देवनागरी लिपि में प्रकाशित करना भी आवश्यक है जिससे रह समूचे देश के लिए उपलब्ध हो सके ।

श्री तुलचन्द्र गुप्त ने प्रवासी बंगीय साहित्य सम्मेलन के इस २६ वें शार्षिक अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में इस बात की घोषणा की कि राष्ट्रभाषा के बन जाने से प्रान्तीय साहित्यों को तनिक भी पति महाँ पहुँचेगी, बल्कि इससे प्रान्तीय साहित्यों की प्रगति में सहायता मिलेगी।

प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी इस सम्मेलन में भाषण दिया।' उन्होंने यह स्वीकार किया कि देवनागरी लिपि ही राष्ट्र–आप को लिपि हो सकती है, धौर जहाँ तक राष्ट्रभाषा का सम्बन्ध, इसका फैसला कानून द्वारा नहीं बल्कि जनमत द्वारा ही होगा।''[3]

'आंतर–भारती' स्तम्भ की प्रकाशन इन्हीं के कार्यकाल मैं शुरू हुआ।

जिनका नाता आजकल से प्रवेशांक के समय से ही है। आजकल के प्रवेशांक से ही यह इसके उप–सम्पादक पद से जुड़े रहे। सम्भवतः इन्होंने आजकल में अपने हिसाब से बेहतरीन परिवर्तन किए जो पाठकों को खूब पसंद आए। चिट्ठी–पत्री पत्रांश नामक स्तंभ से दष्टव्य है पाठकों के विचारः–

''प्रिय महोदय,

सितम्बर अक मे प्रकाशित वाजिदा तबस्सुम को कहानी 'तहखाना' ने मुझे बांध लिया। दरअसल, हर धोरत के दिल में एक तहखाना है और लेखिका ने उसे खूब पहचाना है। एक औरत ही ऐसी कहानी लिख सकती थी।

मुझे खुशी है कि आप हिन्दी कहानी प्रतियोगिता का आयोजन कर रहे है। आजकलश्की, वाकई, एक परम्परा रही हैय इसने कई नए लेखक बनाए हैं। यदि मेरा कहना अतिश्योक्ति न हो तो आज जितने हम नामी लेखक देख रहे हैं, इनमें से अधिकतर 'आजकल' को ही देन हैं। मुझे उम्मीद है आपको यह प्रतियोगिता भी कुछ नई प्रतिभाएं सामने लाएगी।

इतिहास के दरवाजे पर यात्री भी इस अंक की एक जोवन्त रचना है। आपने यह लेख बड़े समय से प्रकाशित किया है।

इसी अंक में एक नया स्तम्भ मुझे भरतीय होने का गर्व है भी देख रहा हूं। यह आपने बहुत अच्छा किया। विघटन के इस युग यह जरूरी है कि हम स्थापित मान्यताओं और मूल्यों को एक बार फिर परखें देखें । मुझे आपके त्रि एक और नए स्तम्भ नए स्वरः नई आकांक्षाएं का भी इंतजार है। नई प्रतिभाओं को सामने लाने का यह अच्छा प्रयास रहेगा।

अंत में आजकल को नया रूप देने के लिए बधाई लें, क्योंकि विषय–सूची वाला पृष्ठ भी बिलकुल बदला–बदला, लेकिन काफी सुन्दर, लग रहा है।

20.9.69 श्यामलाल

दिल्ली–35

प्रिय महोदय,

आजकल का सितम्बर अंक देखने को मिला। उसमें प्रकाशित उर्दू कहानी श्तहखानाश पढ़कर मन प्रसन्न हो गया। मैंने उसे दो बार पढ़ा। लेखिका वाजिदा तबस्सुम ने बड़ी बारीकी से नारी की कोमल भावनाओं का विश्लेषण किया है। वह वास्तव में प्रशंसनीय है। तहखाने के दरवाजे के खुल जाने पर एक बिल्लो और नारी ममता की डोर से बंधकर एक ही धरातल पर आ खड़े होते हैं। लेखिका को मेरी ओर से बधाई लिख दीजिएगा।

24–9–69 सावित्री देवी वर्मा

नई दिल्ली–48

प्रिय महोदय,

सितम्बर अंक प्राप्त हुआ। सभी रचनाएं तृप्तिकर रहीं । विशेषकर श्इतिहास के दरवाजे पर पात्रोंश और वाजिदा तबस्सुम की कहानी । नया स्तम्भ श्मुझे भारतीय होने का गर्व है भी अच्छा रहा।

9.9.1969 अभिमन्यू अनत शबनम त्रिओले (मारीशस)''4

इनके कार्यकाल में ही श्वातायनश शीर्षक से नये स्तम्भ का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस स्तम्भ के संदर्भ में संपादक के विचार द्रष्टव्य है–

इस स्तंभ के लिए आपके नगर में होने वाली नाटक, चित्रकला, साहित्य तथा अन्य महत्वपूर्ण सांस्कृतिक गतिविधियों की समीक्षात्मक टिप्पणी आमंत्रित है। प्रकाशित सामग्री पर उचित पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है

संपादक 5

भगीरथ पांडेय के कार्यकाल में कई तरह के साक्षात्कारं एवं परिचिर्चा प्रकाशन हुआ। द्रोणवीर कोहली के सम्पादन कार्यकाल में भी साक्षात्कार एवं साहित्यिक परिचिर्चा का प्रकाशन प्रमुखता से हुआ। वेद प्रकाश अरोड़ा के कार्यकाल में लगभग प्रत्येक अंक में अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर परिचिर्चा का प्रकाशन हुआ।

वर्ष 1996 के अंकों से प्रसंगश शीर्षक इस स्तम्भ के अंतर्गत से स्तम्भ की शुरुआत हुई। इस स्मम्भ के अंतर्गत देश तथा विदेशों के साहित्यकारों की कृतियों का जिक्र होता था। इस स्तम्भ कें माध्यम से भिन्न क्षेत्रों के विद्वान, रंगकर्मी, सिनेमाकर्मी के विषय में भी जानकारी प्रदान की जाती थी। मार्च 1996 के अंक में प्रसंग स्तम्भ के अंतर्गत रवींद्रनाथ ठाकुर और महादेवी वर्मा के वर्मा के पसंदीदा स्थान का जिक्र है, जहाँ रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी कालजय कृति 'गीतांजलि' का श्रीगणेश किया और महादेवी ने 'दीपशिखा' दकिलोमीटर दूर एक पहाड़ी गांव है उमागढ़ तथा रामगढ़ की चर्चा है। आलेख का यह अंश द्रष्टव्य है–

महादेवी का सपना

नैनीताल से लगभग 25 किलोमीटर दूर, समुद्र की सतह से 7 हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित उमागढ़ नामक एक छोटा–सा पहाड़ी गांव है। शहरी सभ्यता से दूर कुमाऊं की पहाड़ियों में स्थित यह गांव इस संदर्भ में अपना सानी नहीं रखता कि भारतीय साहित्य की दो महान विभूतियों ने इसे अपनी रचना भूमि बनाया। ये हैं महादेवी धर्मा और रवींद्रनाथ ठाकुर कवींद्र रवींद्र सन् 1903 में यहां अपनी बेटी के इलाज के सिलसिले में आए थे। काठगोदाम से पैदल चलते हुए वह भी भीमताल पहुंचे। वहां से स्विट्जरलैंड निवासी डैनियल गुरुदेव को अपने साथ रामगढ़ लाए। रामगढ़ में गुरुदेव पहले तो डैनियल के अतिथि के रूप में रहे किंतु कुछ ही दिनों बाद डैनियल ने गुरुदेव के लिए समुद्र सतह से लगभग साढ़े आठ हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित, उस क्षेत्र की सबसे ऊंची चोटी पर एक भवन वनवाया। इस भवन का नाम गुरुदेव ने 'गीतांजलि' रखा और यहीं उन्होंने भारतीय साहित्य की एकमात्र नोवेल पुरस्कार प्राप्त अपनी कालजयी कृति गीतांजलि का श्रीगणेश किया।

गीतांजलि भवन के खंडहर आज भी उस क्षेत्र में विद्यमान हैं, यद्यपि कमरों, बरामदों और आंगन में कई तरह के बड़े–बड़े के वृक्ष उग आए हैं। रामगढ़ निवासियों के द्वारा उस स्थान को आज भी श्टैगोर टॉपश के रूप में स्मरण किया जाता है तथा देश–विदेशों से अनेक पर्यटक गुरुदेव की इस साधनास्थली को देखने प्रतिवर्ष आते हैं।

महादेवी जी ने 1937 में अपने अध्ययन–मनन के लिए एक छोटा–सा भवन बनाने के उद्देश्य से यहां जमीन खरीदी और फिर वह प्रतिवर्ष गर्मियों में पशु–पक्षियों के अपने विशाल परिवार के साथ यहां आती थीं और साहित्य सृजन, के साथ–साथ समाज सेवा का कार्य भी करती थीं। दीपशिखा संग्रह की समस्त कविताएं उन्होंने यहीं लिखी थीं।''6

आजकल में सम्पादकों ने अपने – अपने कार्यकाल में अनेक तरह के परिवर्तन किए पत्रिका को लोकप्रिय बनाने के लिए। एक उदाहरण द्रष्टव्य है,––––––

''एक नई श्रृंखला''

कीर्तिस्तंभ

आजकल को आकर्षक बनाने के लिए समय–समय पर विशेष सामग्री दी जाती रही है। इसी के तहत अक्टूबर 2007 अंक से हम एक नई श्रृंखला का शुभारंभ करने जा रहे हैं। इस श्रृंखला के अंतर्गत साहित्य, संस्कृति, चित्रकला, संगीत, रंगकर्म और फिल्म आदि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले

यशस्वी रचनाकारों के व्यक्तित्व और कृतित्य पर मूल्यांकनपरक लेख प्रस्तुत किए जाएंगे। इस कड़ी की शुरूआत साहित्य मनीषी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से की जा रही है

संपादक 7

आजकल पत्रिका में कविता, कहानी, आलेख, पुस्तक – समीक्षा, एकांकी, जीवनी, साक्षात्कार एवं परिचर्चा का प्रकाशन तो हुआ ही साथ ही अनेकों स्तंभ का प्रकाशन समय समय पर हुआ। पुराने स्तंभ जो आने बंद हो गए थे उनका पुनर्प्रकाशित होकर नये रूप में आना पत्रिका को जीवन्त एवं लोकप्रिय बनाता है 'वातायन' स्तंभ वर्ष 1974 से प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ फिर से इस स्तंभ का 2008 से प्रकाशन होना शुरू हुआ पत्रिका में शुरू से अब तक कई स्तंभों का प्रकाशन शुरू हुआ आंतर–भारती, विश्व–वाणी, चिठ्टी–पत्री , प्रसंग, साक्षात्कार , दस्तावेज, प्रतिक्रिया........आदि। वर्ष 2020 से पत्रिका में कई नए स्तम्भ जुड़े जैसे शख्सियत, श्रध्दांजलि, विचार–विमर्श, मूल्यांकन, शताब्दी–स्मरण, समय–संदर्भ आदि।

आजकल निःसंदेह एक प्रतिनिधि हिन्दी साहित्यक पत्रिका के रूप में मान्य रही है। साहित्यिक विधाओं को संपुष्ट करने में इसकी भूमिका का ऐतिहासिक महत्त्व है। पराधीन भारत में इसके प्रकाशन की शुरुआत हुई। राजतांत्रिक व्यवस्था के कारण इसके सामने अनेक चुनौतियाँ थीं। राष्ट्रवादी साहित्य के प्रकाशन की बंदिशें थीं, किन्तु उस समय की रचनाशीलता को एक मंच देने का प्रयास इस पत्रिका ने किया। स्वतंत्रता के बाद नए राष्ट्र के निर्माण के लिए रचनात्मक पहल को भी इस पत्रिका ने मुखर किया। पुराने और सिद्ध रचनाकारों के साथ नए रचनाकारों की रचनाएँ भी इसमें प्रकाशित होती रही अपनी 79 वर्षीय अथक यात्रा में इस पत्रिका ने अनेक उपलब्धियां प्राप्त की। समय–समय पर अनेक स्थायी स्तम्भ इसमें जुड़े। इस पत्रिका ने पाठकों की सचि परिष्कृत करने का कार्य भी किया। समय की माता के अनुसार इसके स्वरूप में कतिपय परिवर्तन होते रहे। किन्तु इसकी मूल चेतना साहित्यिक बनी रही इस पत्रिका ने पाठकों के साथ निरंतर संवाद किया। साहित्य को अधिक–से–अधिक संवाद परक बनाने में सार्थक अंशदान रहा।

निष्कर्ष

आजकल निःसंदेह एक प्रतिनिधि हिन्दी साहित्यक पत्रिका के रूप में मान्य रही है। साहित्यिक विधाओं को संपुष्ट करने में इसकी भूमिका का ऐतिहासिक महत्त्व है। पराधीन भारत में इसके प्रकाशन की शुरुआत हुई। राजतांत्रिक व्यवस्था के कारण इसके सामने अनेक चुनौतियाँ थीं। राष्ट्रवादी साहित्य के प्रकाशन की बंदिशें थीं, किन्तु उस समय की रचनाशीलता को एक मंच देने का प्रयास इस पत्रिका ने किया। स्वतंत्रता के बाद नए राष्ट्र के निर्माण के लिए रचनात्मक पहल को भी इस पत्रिका ने मुखर किया। पुराने और सिद्ध रचनाकारों के साथ नए रचनाकारों की रचनाएँ भी इसमें प्रकाशित होती रही अपनी 79 वर्षीय अथक यात्रा में इस पत्रिका ने अनेक उपलब्धियां प्राप्त की। समय–समय पर अनेक स्थायी स्तम्भ इसमें जुड़े। इस पत्रिका ने पाठकों की सचि परिष्कृत करने का कार्य भी किया। समय की माता के अनुसार इसके स्वरूप में कतिपय परिवर्तन होते रहे। किन्तु इसकी मूल चेतना साहित्यिक बनी रही इस पत्रिका ने पाठकों के साथ निरंतर संवाद किया। साहित्य को अधिक–से–अधिक संवाद परक बनाने में सार्थक अंशदान रहा।

संदर्भ–सूचीः–

1. भीतरी आवरण पृष्ठ, प्रवेशांक (मई 1945), सम्पादक – कुँवर किशोर सेठ
2. भीतरी आवरण पृष्ठ, वर्ष–1, अंक–2, जून 1945, सम्पादक – कुँवर किशोर सेठ
3. वर्ष – 4, संख्या – 16, 15 अप्रैल 1949, सम्पादक – देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ – 31
4. पत्रांश, वर्ष – 25, अंक– 7, नवम्बर 1969, सम्पादक – केशव गोपाल निगम, पृष्ठ–48
5. वर्ष – 30, अंक–5, सितंबर 1974, सम्पादक – केशव गोपाल निगम, पृष्ठ – 40
6. वर्ष – 52, अंक–11, मार्च, 1996, सम्पादक–पंकज बिष्ट, पृष्ठ–4
7. वर्ष –63, अंक–5, सितंबर–2007, सम्पादक– योगेन्द्र दत्त शर्मा, पृष्ठ–3

समकालीन भारतीय साहित्य का प्रवेशांकः एक विहंगावलोकन

श्वेता कुमारी*
प्रो. सतीश कुमार राय**
प्रो. कल्याण कुमार झा***

सारांश

समकालीन भारतीय साहित्य पत्रिका वर्ष 1980 से द्वैमासिक नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका मूल रूप से हिन्दी भाषा में रचनाशीलता को प्रेरित व सम्मानित करने का कार्य करती है। साथ ही भारतीय संविधान के आठवीं अनुसूची में वर्णित सभी भाषाओं में हिन्दी में रचित रचनाओं का अनुवाद कराकर प्रसारित करती है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण आदि विधाओं की श्रेष्ठ रचनाओं को भी यह पत्रिका अपने प्रारम्भ से ही मंच प्रदान कर रही है। भारतीय भाषाओं को समृद्ध करने एवं रचनाशीलता को पल्लवित पुष्पित करने में साहित्य अकादेमी की इस पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान है। इस शोध पत्र के अन्तर्गत समकालीन भारतीय साहित्य पत्रिका के प्रवेशांक पर विस्तार पूर्वक विमर्श किया गया है।

बीज शब्दः हिन्दुस्तानी, आध्यात्मिक, बौद्धिक, उदीयमान, जलसुधा, अकादेमी, वैशिष्ट्य इत्यादि।

परिचय

'समकालीन भारतीय साहित्य' साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित एक श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लेखित बाईस भाषाओं के समकालीन साहित्य का हिन्दी अनुवाद इस पत्रिका में प्रकाशित होता है। इसका पहला अंक जुलाई–सितंबर 1980 में प्रकाशित हुआ। हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार गुलशेर खां 'शानी' के संपादन में प्रारंभ हुई यह पत्रिका दिसम्बर 1995 तक त्रैमासिक निकली। इसके बाद यह जनवरी–फरवरी से द्विमासिक के रूप में निकल रही है। अब तक इसके कुल 234 अंक निकल चुके हैं।

मुख्य भाग

मार्च 1930 में कथा सम्राट प्रेमचंद ने जब हंस का सम्पादन–प्रकाशन प्रारंभ किया तो उनका उद्देश्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में अंतर्संवाद पर बल देना था। प्रेमचंद के इस प्रयास को 'समकालीन भारतीय साहित्य' ने न केवल सार्थक दिशा दी अपितु उसे उत्कर्ष पर पहुँचाया। यह अकारण नहीं है कि प्रवेशांक का प्रकाशन उनकी जन्म शताब्दी पर हुआ। प्रेमचंद की स्मृति को नमन करते हुए संपादक ने प्रवेशांक उनको समर्पित किया है–''जिन्होंने ''हंस'' के माध्यम से भारतीय साहित्य की एकात्मकता स्वप्न देखा था उन्हीं प्रेमचंद को उनकी जन्म–शताब्दी पर समर्पित।''[1] प्रवेशांक के संपादकीय में शानी ने प्रेमचंद के अवदान को और इस पत्रिका के उदेश्य को रेखांकित किया है। प्रेमचंद के उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुए शानी ने लिखा है– ''कोई राष्ट्र केवल इसलिए राष्ट्र नहीं होता कि वह एक राज्य के अंतर्गत है बल्कि इसलिए भी कि उसमें सांस्कृतिक एकता और दृढ़ता है। लिपि, भाषा और साहित्य, संस्कृति के मुख्य अंग हैं। लिपि का प्रश्न तो राष्ट्र ने तय कर दिया और नागरी लिपि राष्ट्र की लिपि स्थिर हो गई है । भाषा के विषय में भी अब कोई मतभेद नहीं रहा। हिन्दुस्तानी हमारी राष्ट्रभाषा स्थिर हो गई है। अब साहित्य को भी हम प्रांतीयता के संकुचित क्षेत्र से निकालकर राष्ट्रीयता के वृहत् क्षेत्र में लाकर सांस्कृतिक एकता में जो कसर थी, उसे पूरा कर देना चाहते हैं। वह आध्यात्मिक और बौद्धिक धारा जो इस समय संपूर्ण राष्ट्र में समान रूप से प्रवाहित हो रही है, भाषा–भेद के कारण अवरुद्ध होकर रह जाती है और संपूर्ण राष्ट्र को उसके जलसुधा से लाभान्वित होने का का अवसर नहीं मिलता।''

ये शब्द है प्रेमचंद के – अगस्त– सितम्बर १९३५ के लिखे हुए। दरअसल यह एक सपने की भूमिका थी जिसे गाँधी की प्रेरणा से प्रेमचंद ने कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के साथ मिलकर देखा था और

* जे० आर० एफ० नेट, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, बी. आर. अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
** विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, बी० आर० अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
*** विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, बी० आर० अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

जिसके तहत 'हंस' को नये रूप में प्रकाशित करने की योजना बनायी जा रही थी। योजना थी कि हंस भारतीय साहित्य के मुखपत्र की तरह बम्बई से निकले और उसका संपादन प्रेमचंद और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी मिलकर करें। इसके प्रकाशन के लिए बम्बई में एक लिमिटेड कंपनी भी बनायी गई थी और वही उसका दायित्व ले रही थी। इसके पीछे कोई व्यावसायिक स्वार्थ नहीं था – मकसद सिर्फ यह था कि संपूर्ण भारत के साहित्य से परिचित कराने का जिम्मा 'हंस' उठाए । प्रान्तीय, साहित्यों में जो श्रेष्ठ और सुन्दर है, वह हिन्दी के पाठकों को 'हंस' के जरिए मिलता रहे। प्रेमचंद ने लिखा था – ''क्या यह खेद की बात नहीं है कि अभी तक हम प्रान्तीय साहित्यों की प्रगति और मूल धाराओं से बेखबर हैं? पुराने बंगाली साहित्य से हम बहुत कुछ परिचित हैं लेकिन उसकी साम्प्रतिक गति का हमें कुछ पता नहीं है। दक्षिण भारत के साहित्य से तो, हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। जब भारत एक राष्ट्र है, हिन्दी राष्ट्र–लिपि है तो भारतीय साहित्य में जो कुछ भी निकले, वह राष्ट्र–साहित्य है। तभी हमारे साहित्यिक दृष्टिकोण का विकास होगा, तभी हम साहित्य को राष्ट्रीय मापदंड से नापेंगे और तभी हमारे साहित्यिक आदर्श ऊँचे होंगे।"[2]

उन्होंने आगे लिखा है – ''उन्हीं दिनों जुलाई **१९३५** को इसी समस्या के आस–पास विचार करते हुए कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी ने भारतीय साहित्य के संगठन पर लेख लिखे थे। उन्होंने लिखा था कि इंग्लैण्ड की साहित्यिक सांस्कृतिक कृतियों के विषय में हमारा जितना ज्ञान है उतना अपने पड़ोसी प्रान्तों के साहित्य के विषय में नहीं है। उस प्रांत के बाहर ऐसे कम लोग हैं जिन्हें उदीयमान लेखकों की शैली और कला या उसकी साहित्यिक धाराओं का कुछ ज्ञान हो। जिन प्रांतों में हिन्दी नहीं बोली जाती, वहाँ कुछ लोग तुलसी या सूरदास के नाम से भले ही परिचित हों, लेकिन वे साहित्यिक उद्योग से अपरिचित हैं जो आज हिंदी में हो रहा है।

अजीब बात है कि लगभग आधी शताब्दी गुजर जाने के बाद भी स्थिति आज बहुत ज्यादा नहीं बदली है। आज भी भारतीय साहित्य की अपेक्षा पाश्चात्य साहित्य के ज्ञान की 'स्नाब वैल्यू' उतनी ही बनी हुई है। परिणामस्वरूप जिन भारतीय भाषाओं को जोड़ने का काम करना चाहिए वे तोड़ती हुई नजर आती हैं। मुंशी ने जिस भारतीय साहित्य के संगठन की कल्पना की थी उसने तो साहित्य अकादेमी के रूप में आकार लिया। दूसरे की शुरुआत 'समकालीन भारतीय साहित्य' के माध्यम से की जा रही हैं। जैसा कि आप देख रहे हैं, यह हिन्दी की सिर्फ एक और पत्रिका नहीं है बल्कि भाषाओं के जरिये एक इमारत गढ़ने के सपने की बुनियाद है। इस अंक में आठ भारतीय भाषाओं की समकालीन रचनाएँ रखते हुए जहाँ एक ओर सुखद आश्चर्य होता है वहीं संतोष भी है। इन रचनाओं से गुजरना साधारण तौर पर एक मामूली जायजा लेना नहीं है बल्कि एक जीवित अनुभव से समृद्ध होना है– वह चाहे रघुबीर चौधरी की कहानी 'मितली हो, मधुराय की 'सरल और शम्पा' हृदय कौल भारती की कहानी हो या कुमार पाशी की नज्म......।"[3]

इसी संपादकीय में उन्होंने लिखा है – ''साहित्य अकादेमी के उद्घाटन भाषण में डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था– "महान साहित्य की रचना तभी होती है जब आदमी अपनी सोच में अकेले होने का साहस कर सके, अपने विचारों में स्वतंत्र हो और जो कुछ भी उस पर घटता है, उन्हें अभिव्यक्ति दें।''

इन रचनाओं में समकालीन भारतीय दुनिया की वे घटनाएँ उजागर होती हैं जो आज के आदमी के बृहत्तर तथा अकेले जीवनों में घटित हो रही हैं और जिनसे जूझता हुआ वह अकेला भी होता है और सबके साथ भी है।

यह सुखद संयोग है कि 'समकालीन भारतीय साहित्य' का पहला अंक प्रेमचंद जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है, लिहाजा यह उन्हीं की स्मृति को समर्पित है।''[4]

प्रवेशांक में विभिन्न भारतीय भाषाओं यथा–उर्दू, ओड़िया, कश्मीरी, गुजराती, तेलुगु, सिंधी, बांङ्ला, तमिल की रचनाएं प्रकाशित हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि इस अंक में हिंदी की एक भी मौलिक रचना नहीं है। प्रवेशांक की विषय सूची निम्नलिखित है–

वर्ष – 1 अंक –1''5

सम्पादकीय		०७
कविताएँ		
तीन कविताएं	कुमारी पाशी	०९
कहानियाँ		
जादू	जोगीन्द्र पॉल	१३

कम्पोजिशन पाँच	बलराज मेनरा	२९
सीप	कृष्णप्रसाद मिश्र	२६
फोटो में छुपा आदमी	श्यामाप्रसाद चौधरी	३२
समय की चौखट	हृदय कौल भारती	३९
अपमान	अख्तर मुहीउद्दीन	४२
फाटक	अमीन कामिल	४५
मितली	रघुवीर चौधरी	४७
सरल और शम्पा	मधु राय	५५
आत्महत्या	श्री एरैम शेट्टि शायि	६२
रीठे के पत्ते	चागंटि सोमाया जुलु	७३
संजीवि पहाड़	के० लीलामोहन राव	७८
कुछ और कविताएँ		
दो ग़ज़ले	गुलाम रब्बानी ताबाँ	८३
चार कविताएँ	सीताकांत महापात्र	८५
तीन कविताएँ	जगन्नाथ प्रसाद दास	९२
कविता	दीनानाथ नादिम	९५
दो कविताएँ	रावजी पटेल	९६
दो कविताएँ	लाभशंकर ठाकुर	९८
कविता	गुलाम मुहम्मद शेख	१००
कविता	डॉ० बी० गोपाल रेड्डी	१०१
कविता	नचिकेता	१०३
एकांकी		
टापू अकेले	श्याम जयसिंघाणी	१०४
कुछ और कहानियाँ		
एक झुण्ड आवारा बच्चे	ज्योतिरीन्द्र नन्दी	१०८
देवाशिष का	बलराम बसाक	११९
साँचे में	के० एस० वालाणी	१३०
चिन्ता		
बड़े और छोटे	टी० जानकीरामन्	१३६

प्रवेशांक में उर्दू के कवि कुमार पाशी की कविताएँ उन्हीं के द्वारा रूपांतरित होकर छपी है। उनकी कविताएँ समकालीन उर्दू नज़्म के तेवर को रेखांकित करती हैं।

उदाहरणार्थ – "तुम्हारे नाम लिखता हूँः सितारे, तितलियाँ, जुगनू
तुम्हारे रास्ते सीधे बनें
साये हों उन पर जगमगाते आसमानों के
खुलें तुम पर सुहाने राज अनदेखे जहानों के
कि आँखों में तुम्हारी ख्वाब हों ऊँची उड़ानों के
तुम्हारे नाम लिखता हूँः मसर्रत, आरजू, खुशबू
तुम्हारा एक–एक दिन खूबसूरत हो, मिसाली हो
तुम्हारी कोई भी शब चाँद–तारों से न ख़ाली हो
सहर होते जो तुम उट्ठो
तुम्हारे सामने फैले हुए गोषे हों फूलों के
जो रात आए
तुम्हारी आँखों में सपने हों झूलों के
तुम्हारे नाम लिखता हूँः वो शहर–ए–खुशनुमा सारे

कि जो देखे नहीं मैंने
तुम्हारे नाम लिखता हूँ। वो सारे खूबसूरत लफ्ज
जो लिक्खे नहीं मैंने
तुम्हारे नाम उजली सुबह, रंगी शाम लिखता हूँ
बक़ा का जाम लिखता हूँ
जो लम्हे सुख के हासिल है मुझे वो सब तुम्हारे नाम लिखता हूँ
तुम्हारे नाम लिखता हूँ।"[6]

समकालीन उर्दू गजल की प्रकृति गुलाम रब्बानी ताबाँ की इस गजल में देखी जा सकती है –

"खुदनुमा तो क्या कहिए खुदशिकन – सी होती है
जिन्दगी के ख्वाबों की अन्जुमन–सी होती है।
हम भी ढूँढ़ ही लेते गोश– ए– अमाँ कोई
कैद के तसव्वुर से इक घुटन – सी होती है।
लोग बेजबानी को दर्द की जबाँ समझें
वर्ना दिल की बेताबी कम–सुख़न–सी होती है ।
जिन्दगी का हर मन्जर अजनबी – सा लगता है
अब नजर कहीं जाए बे वतन–सी होती है।
दिलनवाज हैं कितनी मौसमी हवाएँ भी
नर्म–नर्म झोंके में कुछ चुभन – सी होती है।
हर्फ़े मुद्दआ ताबाँ जब भी लब पे आता है
देर तक न जाने क्यों इक जलन–सी होती है।"[7]

सीताकांत महापात्र ओड़िया के अत्यंत प्रसिद्ध कवि हैं। इस अंक में उनकी चार कविताएँ संकलित व प्रकाशित है– 'मेरे सुनसान घर में, 'कविता का जन्म (1) 'कविता का जन्म (2) और 'मुग्ध इलाके में'। उनकी पंक्तियाँ हैं–

"शब्द ही गढ़ता है
हाथ–पैर विहीन अधबना प्रेम–देवता
फिर चूर–चूर कर देता है वही
देह का गरब लीला–खेल, बचपन के स्वप्न और दृश्य
वामन अवतार है शब्द
एक ही पैर से नाप लेता है आकाश और पृथ्वी
दूसरे पाँव से नापता वह जादूगर, शून्य अंतरिक्ष
तीसरे पैर के लिए कहाँ है जगह
मैं चुपचाप उस ब्राह्मण के लिए, झुका देता हूँ अपना सिर"[8]

निष्कर्ष – इस प्रकार प्रवेशांक में ही इस पत्रिका ने भारतीय साहित्य के वैशिष्ट्य को रेखांकित किया है। हिंदी भाषा–भाषियों को समकालीन भारतीय साहित्य की सार्थकता भी बताई है। गुलषेर खां शानी स्वयं हिंदी के एक श्रेष्ठ कथाकार के रूप में मान्य रहे हैं और भारतीय साहित्य के गंभीर अध्येता भी। इस प्रकार इस पत्रिका का आरंभ साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कदम है।

संदर्भ–सूची

1. समकालीन भारतीय साहित्य, प्रवेशांक का समर्पण, पृष्ठ– 4
2. समकालीन भारतीय साहित्य,संपादकीय, प्रवेशांक, पृष्ठ– 7, 8
3. वही, पृष्ठ– 8
4. वही, पृष्ठ– 8
5. जुलाई–सितम्बर 1980, सं.–शानी, पृष्ठ–5, 6
6. समकालीन भारतीय साहित्य, तुम्हारे नाम लिखता हूँ, प्रवेशांक, पृष्ठ–12
7. समकालीन भारतीय साहित्य, दो, प्रवेशांक, पृष्ठ– 84
8. समकालीन भारतीय साहित्य, कविता का जन्म (9), प्रवेशांक, पृष्ठ– 87

ᘓᘐ

भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक का प्रयोग और सामाजिक दुष्प्रभाव

डॉ. निशा सिंह*

शोध सारांश

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) के तेज़ी से बढ़ते विकास ने वैश्विक स्तर पर कई अवसर पैदा किए हैं। हालाँकि, ये तेज़ बदलाव गहरी नैतिक चिंताएँ भी पैदा करते हैं। ये चिंताएँ एआई प्रणालियों की उन संभावित क्षमताओं से उत्पन्न होती हैं जो पूर्वाग्रहों को जन्म देती हैं, जलवायु परिवर्तन में योगदान देती हैं, मानवाधिकारों को ख़तरा पहुँचाती हैं, और भी बहुत कुछ। एआई से जुड़े ऐसे जोखिम पहले से ही मौजूदा असमानताओं के साथ और भी बढ़ने लगे हैं, जिससे पहले से ही हाशिए पर पड़े समूहों को और नुकसान पहुँच रहा है। इस समस्या को दूर करने के लिए, 2021 में 193 सदस्य देशों ने सर्वसम्मति से कृत्रिम बुद्धिमत्ता की नैतिकता पर सिफारिश को अपनाया। भारत में भी विभिन्न क्षेत्रों में इसके विकास और अनुप्रयोग की दिशा में सक्रिय रूप से काम हो रहा है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) भारत में स्वास्थ्य सेवा, वित्त और शिक्षा सहित विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से बदलाव ला रहा है। लेकिन जैसे–जैसे समाज एआई पर अधिकाधिक निर्भर होता जा रहा है, तकनीकी निर्भरता का जोखिम भी बढ़ रहा है। यह निर्भरता मानवीय कौशल और क्षमताओं को कम कर रही है। जिसका सीधा प्रभाव बेरोजगारी और आर्थिक सामनता, संबंधों में दूरी और अलगाव का बढ़ना, मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर जैसी अनेकों समस्याएं समाज में अपनी जड़ें जमाती जा रही है। प्रस्तुत आलेख कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक के बढ़ते अनुप्रयोग से होने वाले सामाजिक दुष्प्रभाव को उजागर करने का एक प्रयास है।

मुख्य शब्द – कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सामाजिक प्रभाव, तकनीक, प्रयोग, एआई

परिचय –

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) की अवधारणा पर पहली बार 1956 में डार्टमाउथ कॉलेज में एक कार्यशाला में चर्चा की गई थी, जिसे जॉन मैक्कार्थी और मार्विन मिन्स्की द्वारा निर्देशित किया गया था। एआई ने 1960 के दशक में प्रोफेसर एच.एन. महाबाला के कार्यों के माध्यम से भारत में प्रवेश किया। यूएनडीपी द्वारा 1986 में बनाए गए ज्ञान–आधारित कंप्यूटिंग सिस्टम (केबीसीएस) ने भी भारत के लिए एआई पर ध्यान केंद्रित करने का मार्ग प्रशस्त किया। यह संयुक्त राज्य अमेरिका था जो पिछले कुछ दशकों में एआई के क्षेत्र में अग्रणी रहा था लेकिन भारत एआई में अपने ज्ञान और अनुसंधान को बढ़ाने के लिए प्रयास कर रहा है।[1]

2018 में, भारत सरकार ने आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के लिए राष्ट्रीय रणनीति शुरू की, जो विशिष्ट क्षेत्रों में एआई विकास को बढ़ावा देने पर केंद्रित थी। इस रणनीति ने एआई के अनुप्रयोगों के उपयोग में और प्रगति की नींव रखी। हाल ही में स्वीकृत राष्ट्रीय एआई मिशन (INDIA AI) मिशन का उद्देश्य एक व्यापक पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करना है जो कंप्यूटिंग पहुंच को लोकतांत्रिक बनाकर, डेटा गुणवत्ता को बढ़ाकर, स्वदेशी AI क्षमताओं को विकसित करके, शीर्ष AI प्रतिभा को आकर्षित करके, उद्योग सहयोग को सक्षम करके, स्टार्टअप जोखिम पूंजी प्रदान करके, सामाजिक रूप से प्रभावशाली AI परियोजनाओं को सुनिश्चित करके और नैतिक AI को बढ़ावा देकर AI नवाचार को बढ़ावा देता है।[2]

कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक का अनुप्रयोग और जोखिम –

भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) तेजी से विकसित हो रही है और यह अर्थव्यवस्था, समाज तथा विभिन्न क्षेत्रों को बदल रही है। 2025 तक, AI भारतीय अर्थव्यवस्था में लगभग 450–500 अरब डॉलर का योगदान देने की उम्मीद है, जो जीडीपी का 10% हिस्सा होगा। सरकारी पहल जैसे India Mission के तहत, AI को कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा और शासन जैसे क्षेत्रों में लागू किया जा रहा है। यह मिशन 2025 के अंत तक छह बड़े AI मॉडल और 18 अतिरिक्त एप्लीकेशन विकसित करने का लक्ष्य रखता है, जो भारतीय भाषाओं

---

* समाजशास्त्र विभाग, शास0 ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा, मध्यप्रदेश

[1] https://karpagamtech.ac.in/indias-ai-journey/

[2] https://www.psa.gov.in/mission/artificial-intelligence/34

और स्थानीय जरूरतों पर केंद्रित हैं। विभिन्न क्षेत्रों में एआई के बढ़ते प्रयोग और उस क्षेत्र में होने वाले दुष्प्रभाव निम्न हैं –

कृषि (Agriculture) –

भारत की 50% से अधिक आबादी कृषि पर निर्भर है, और AI यहां उत्पादकता बढ़ाने में क्रांतिकारी भूमिका निभा रहा है। AI संचालित ऐप्स जैसे Agripilot-ai किसानों को मौसम, मिट्टी की स्थिति, कीटों के हमलों और पानी की आवश्यकता के बारे में अलर्ट देते हैं, जिससे उत्पादन लागत 50% तक कम हो सकती है और पैदावार 40% बढ़ सकती है।

Microsoft और Agriculture Development Trust के सहयोग से खुतबाव गांव में AI का उपयोग पानी और कीटनाशकों के इष्टतम उपयोग के लिए किया गया, जिससे 2025 में उल्लेखनीय सुधार हुआ। IndiaAI Mission के तहत एग्रीटेक समाधान विकसित हो रहे हैं, जो जलवायु परिवर्तन और आपदा प्रबंधन पर फोकस करते हैं।

दुष्प्रभाव –

छोटे और सीमांत किसानों का बाहर होना – भारत में 86 प्रतिशत किसान 2 हेक्टेयर से कम जमीन वाले है जबकि एआई आधारित किसानी उपकरण बहुत महंगे हैं।

डेटा पर एकाधिकार और किसानों की निर्भरता – ज्यादातर एआई निजी कंपनियों के हैं, ये कंपनियां किसानों के फसल, मिट्टी, मौसम एवं कीमत का सारा डेटा अपने पास रखती हैं।

गलत भविष्यवाणी – एआई माडल से भविष्यवाणी करने में गलती हो जाती है विशेषकर भारतीय मौसम और मिट्टी की विविधता के कारण।

रोजगार में कमी – एआई के अनुप्रयोग ने किसानों में पहले से छिपी बेराजगारी को और बढ़ा दिया है, कीटनाशक का छिड़काव, फसलों की कटाई जैसे अनेकों कार्य एआई के मदद से संभव हुए हैं।

बीज और रसायनों पर कॉर्पोरेट का नियंत्रण – एआई बीज एवं रसायनों के संदर्भ में जो सलाह देता है वो अक्सर उन कंपनियों के होते हैं जो उनसे टाईअप होते हैं। ऐसे बीज और रसायन काफी महंगे होते हैं जो किसानों पर कर्ज लेने की अवस्था में पहुंचा देता है।

डेटा के गोपनीयता का दुरूपयोग – किसानों की जमीन, बैंक खाता, आधार आदि डाटा कंपनियों के पास रहता है जिसका दुरूपयोग होने की संभावना बनी रहती है। वर्तमान में कई ऐसे उदाहरण सामने आयें हैं कई किसानों के डाटा का दुरूपयोग कर साइबर अपराधियों ने किसानों को अपना शिकार बनाया है।

स्वास्थ्य सेवा (Healthcare) –

AI स्वास्थ्य पहुंच को सुलभ बना रहा है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। AI–पावर्ड टूल्स जैसे e–Paarvai (तमिलनाडु सरकार द्वारा) मोतियाबिंद का पता लगाने में मदद करते हैं, जहां डॉक्टरों की कमी है। Sigtuple जैसी स्टार्टअप्स AI का उपयोग पैथोलॉजी रिपोर्ट्स को तेजी से विश्लेषित करने के लिए कर रही हैं। 2025 में, India AI Safety Institute नैतिक AI फ्रेमवर्क विकसित कर रहा है, जो स्वास्थ्य डेटा की गोपनीयता सुनिश्चित करेगा। 18 AI एप्लीकेशनों में स्वास्थ्य पहुंच एक प्रमुख क्षेत्र है।

दुष्प्रभाव –

गलत निदान और चिकित्सकीय गलनियां – एआई भारतीय त्वचा, अनुवांशिक विविधता का सही से नहीं पहचान पाते। त्वचा कैंसर डिटेक्शन में गहरे रंग की त्वचा पर एआई की सटीकता 30–40 प्रतिशत तक गिर जाती है। 2023 में कुछ अस्पतालों में एआई रेडियोलाजी टूल ने टीबी को गलत तरीके से निमोनिया बता दिया।

डॉक्टरों की अतिनिर्भरता और कौशल ह्रास – डॉक्टरों की निर्भरता एआई पर बढ़ने के कारण उनकी कौशल शक्ति छीण हो रही है।

गरीब मरीजों की समस्या में वृद्धि – एआई उपयोग वाले उपचार अत्यधिक महंगे होते हैं और चिकित्सकों की निर्भरता भी एआई की अनुप्रयोग में बढ़ती जा रही है ऐसे में गरीब मरीजों को उचित उपचार प्राप्त करने में भारी समस्या बढ़ रही है।

शिक्षा (Education) :

AI शिक्षा को व्यक्तिगत और समावेशी बना रहा है। 2025–26 के बजट में ₹500 करोड़ के निवेश से AI सेंटर ऑफ एक्सीलेंस स्थापित किया जा रहा है, साथ ही 50,000 अतल टिंकरिंग लैब्स स्कूलों में लगेंगी। YUVA AI for ALL जैसी मुफ्त सरकारी कोर्स (Future Skills Prime पर उपलब्ध) AI बेसिक्स, नैतिक उपयोग

और करियर पथ सिखाती हैं। उच्च शिक्षा में 50% छात्र AI टूल्स का उपयोग रिसर्च, लेखन और जटिल विषयों को समझने के लिए कर रहे हैं। Microsoft के ADVANTA(I)GE India प्रोग्राम ने 2024–25 में 2.4 मिलियन लोगों को AI स्किल्स सिखाईं, जिनमें 65% महिलाएं हैं।

दुष्प्रभाव –

शिक्षा और कुशलता का ह्रास – Unesco 2024 के रिपोर्ट के आधार पर 70 प्रतिशत से ज्यादा छात्र असाइनमेंट में एआई का उपयोग कर रहे हैं। जबकि क्रिटिकल थिंकिंग में 30–40 प्रतिशत की कमीं आई है।

स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी 2025 के अनुसार जो छात्र लगातार एआई टूल्स का उपयोग करते हैं, उनकी स्वतंत्र लेखन क्षमता 02 साल में 45 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

वित्त और बैंकिंग (Finance and BFSI) :

AI धोखाधड़ी पहचान और ग्राहक सेवा को मजबूत कर रहा है।

ब्लॉकचेन के साथ AI एकीकरण डेटा अखंडता और फ्रॉड डिटेक्शन के लिए उपयोग हो रहा है। 2025 में, बैंकिंग IT खर्च $15 अरब तक पहुंचेगा, जहां AI चौटबॉट्स प्रतिक्रिया समय 80% कम कर देते हैं और लागत 35% बचाते हैं। RBI AI नैतिकता के लिए फ्रेमवर्क विकसित कर रहा है।

दुष्प्रभाव –

पारदर्शिता की कमीं – जटिल न्यूरल नेटवर्क के फैसले समझना बहुत मुश्लिक होता है। यदि एआई किसी को लोन देने से मना कर दे तो क्यों बनाता रेगुलेटर के लिये जरूरी है, लेकिन ज्यादातर मॉडल विश्लेषण नहीं कर पाते।

नौकरियों का बड़े पैमाने पर विस्थापन – ऋण प्रक्रिया, ग्राहक सुरक्षा एवं सुविधा, अकाउंट रिकॉन्सिलिएशन जैसे कई रूटीन कार्य अब एआई और रोबेटिक प्रोसेस ऑटोमेंशन कर रहे हैं।

सिस्टेमिक जोखिम और फ्लैश क्रैश – 2010 में हाई फ्रिक्वेंसी ट्रडिंग के कारण बाजार क्रेश हो चुका है। भविष्य में भी ऐसे आर्थिक जोखिम का खतरा बना रहगा। सभी बैंक एक ही एआई माडल या समान डेटा पर निर्भर होने लगे तो पूरे वित्तीय तंत्र में एक साथ जोखिम बढ़ जाता है।

शासन और स्मार्ट सिटी (Governance and Smart Cities) :

AI शासन को डेटा–आधारित और कुशल बना रहा है। Digi Locker और UMANG ऐप्स AI के माध्यम से दस्तावेज डिजिटाइजेशन और सरकारी सेवाएं प्रदान करते हैं। स्मार्ट सिटी में AI ट्रैफिक प्रबंधन, अपशिष्ट प्रबंधन और ऊर्जा अनुकूलन के लिए उपयोग हो रहा है, जो 2025 तक $31 अरब का बाजार पैदा करेगा। iGOT–AI Mission Karmayogi पब्लिक सेक्टर अधिकारियों के लिए AI क्षमता निर्माण कर रहा है।

दुष्प्रभाव –

सामाजिक असमानता और वर्ग विभाजन का बढ़ना – शासन की सुविधाओं का अधिकतम लाभ अमीर वर्ग और डिजिटल साक्षर लोग ही ले पाते हैं।

निजता का हनन – एआई तकनीक का वृहद उपयोग जिसमें फेशियल रिकग्निशन का विकल्प लोगों में सामाजिक भय उत्पन्न कर रहा है।

महिलाओं और अल्पसंख्यकों पर अतिरिक्त दबाव – एआई संचालित सेफ सिटी कैमरे अक्सर महिलाओं की ड्रेस, रात में बाहर होने जैसी घटनाओं पर नजर रखते हैं। हिजाब पहनने वाली महिलाओं को फेशियल रिकग्निशन संदिग्ध घोषित कर देता है।

सामुदायिक विश्वास का खतरा – किसी व्यक्ति की जाने–अनजाने हुए अपराधिक कृत्य उसे भावी अपराधी घोषित कर देता है, जो सामुदायिक विश्वास के लिये खतरा है।

अन्य सामाजिक दुष्प्रभाव :

बेरोजगारी और आर्थिक असमानता –

IMF (2024) – विश्व की लगभग 40 प्रतिशत नौकरियों पर AI का प्रभाव पड़ेगा, विकसित देशों में 60 प्रतिशत नौकरियाँ जोखिम में। World Economic Forum (2023–25) – 2027 तक 8.5 करोड़ नौकरियाँ खत्म होंगी, केवल 6.9 करोड़ नई नौकरियाँ बनेंगी → नेट नुकसान। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी (Frey & Osborne, 2017, अपडेट 2024) – भारत में 69% नौकरियाँ ऑटोमेशन के उच्च जोखिम में (ड्राइवर, रिटेल, बीपीओ आदि)। McKinsey Global Institute (2024) – भारत में 2030 तक 4.5 करोड़ लोगों को नई स्किल सीखनी पड़ेगी वरना बेरोजगार हो जाएँगे।

मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव –

American Psychological Association (2023–25) – सोशल मीडिया के – एल्गोरिदम से किशोरों में डिप्रेशन 27 प्रतिशत और आत्महत्या के विचार 19 प्रतिशत बढ़े। Instagram आंतरिक शोध (2021, लीक 2024 तक) – 32 प्रतिशत किशोरियों ने कहा कि Instagram ने उनकी बॉडी इमेज को और खराब किया। Royal Society for Public Health] UK (2024) – AI & ड्रिवेन रिकमंडेशन सिस्टम स्क्रॉल टाइम को 70 प्रतिशत तक बढ़ाते हैं → नींद की कमी और चिंता। Haidt – Twenge (2024) – 2012 के बाद से Gen-Z में अकेलापन और डिप्रेशन में 100–150 प्रतिशत की वृद्धि, मुख्य कारण AI आधारित सोशल मीडिया।

डीपफेक और लोकतंत्र पर खतरा –

Deepfake Detection Challenge (2024) – अब केवल 55–60 प्रतिशत डीपफेक वीडियो ही डिटेक्ट हो पाते हैं। भारत में 2024 लोकसभा चुनाव के दौरान 300+ डीपफेक वीडियो वायरल (Fact & check रिपोर्ट्स)। MIT Technology Review (2025) – 2024–25 में दुनिया भर के 50+ चुनावों में AI–जनरेटेड फेक कंटेंट का दुरुपयोग हुआ।[3]

गोपनीयता और निगरानी –

Amnesty International (2024) – भारत में 12 राज्यों में फेशियल रिकग्निशन का पुलिस द्वारा दुरुपयोग, बिना कानूनी आधार के।[4]

सामाजिक ध्रुवीकरण –

NYU & Stanford अध्ययन (2024) – YouTube और Facebook के AI एल्गोरिदम राजनीतिक ध्रुवीकरण को 10–15 प्रतिशत तक बढ़ाते हैं। भारत में WhatsApp + AI टूल्स से 2018–2024 तक 100+ मॉब लिंचिंग केस (AltNews रिपोर्ट)।

लैंगिक और नस्लीय पूर्वाग्रह –

Google Photos (2015–2023 तक): गहरे रंग के लोगों को "गोरिल्ला" टैग करता रहा। Amazon का रिक्रूटमेंट AI (2018) – महिलाओं के रिज्यूम अपने आप रिजेक्ट कर देता था। AI चौटबॉट्स (2023–25) – भारतीय नामों/भाषाओं पर खराब परफॉर्म करते हैं (IIT दिल्ली अध्ययन)। NITI आयोग रिपोर्ट (2024) – भारत में AI से 2035 तक GDP में $1 ट्रिलियन का फायदा होगा, लेकिन 7–8 करोड़ लोग बेरोजगार हो सकते हैं। 2024–25 में भारत में AI पोर्न/डीपफेक से 50,000+ महिलाएँ प्रभावित (Internet Freedom Foundation)। दिल्ली, हैदराबाद, लखनऊ में फेशियल रिकग्निशन से गलत गिरफ्तारियाँ (2023–25)।

निष्कर्ष –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का बढ़ता प्रयोग समाज को अभूतपूर्व गति से बदल रहा है, लेकिन इसके अधिकांश गंभीर दुष्प्रभावों (बेरोजगारी, मानसिक स्वास्थ्य, गोपनीयता, ध्रुवीकरण) के लिए अभी तक कोई प्रभावी नीति या कानून नहीं बना है। ज्यादातर देश "रेगुलेट करने की बात" कर रहे हैं, लेकिन टेक्नोलॉजी बहुत तेजी से आगे बढ़ रही है। यह अनुमान लगाना कठिन है कि भविष्य में एआई हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करेगा, हालाँकि अब तक इसका प्रभाव काफ़ी महत्वपूर्ण रहा है। हालाँकि एआई में समाज की मदद करने की अपार क्षमता है, जैसे स्वास्थ्य सेवा के परिणामों में सुधार, लेकिन यह बढ़ती असमानता सहित सामाजिक और नैतिक नुकसान भी पैदा कर सकता है।[5] एआई से समाज को कितना लाभ होगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि इसका विनियमन किस प्रकार किया जाता है, नुकसान से बचाव के लिए सुरक्षा के स्तरित उपाय जागरूकता उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

---

[3] https://www.technologyreview.com/2025/01/03/1109178/10-breakthrough-technologies-2025/

[4] https://www.amnesty.org/en/documents/pol10/7200/2024/en/

[5] https://post.parliament.uk/how-is-artificial-intelligence-affecting-society/